उचित को ही स्वीकार करिए।

आपका कार्य केवल लोगों को प्रसन्न करना, केवल किन्हीं की आज्ञा का पालन करना. किन्हीं के इशारे पर नाचना या किन्हीं का अन्ध भक्त बनना नहीं होना चाहिए। वरन् यह होना चाहिए कि उचित, आवश्यक, लाभदायक, धर्म संगत. विवेक युक्त कार्य को करेंगे। इस नीति को अपनाने के पश्चात् आमतौर से लोगों की नाराजी, निन्दा भर्त्सना, बुराइ तथा विरोध का सामना करना पड़ता है। धर्म जीवन के मार्ग में प्रधान बाधा यही है। जिसने इस बाधा को तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया वह आगे बढ़ जाता है, जो इस कागज के हाथो से डर गया उसको पश्चात्ताप और शोक में जलना पड़ता है।

आप किसी बात को इसलिए स्वीकार मत कीजिए कि उसे बहुत लोग, बूढ़े लोग, धनी लोग कहते हैं। सत्य की कसौटी यह नहीं है कि उसे बहुत, बूढ़े और धनी लोग ही कहते हों। सत्य हमेशा उचित, आवश्यक, न्याय युक्त तथ्यों से एवं ईमानदारी से भरा हुआ होता है थोड़ी संख्या में, कम उम्रके, गरीब आदमी भी यदि ऐसी बात को कहते हैं तो वह मान्य है। अकेला आपका आत्मा ही यदि सत्य की पुकार करता है तो वह पुकार लाखों मूर्खों की बक बक से अधिक मूल्यवान है। जो उचित है वही ग्रहण करने योग्य है। वही स्वीकार करने योग्य है।

पाठकों को आवश्यक सूचनाएं।

(१) इस अंक के साथ अखंड ज्योति के अधिकांश पाठकों का चंदा समाप्त हो जाता है सन् ४५ का चन्दा मनीआर्डर से भेजने की प्रार्थना है। वी० पी० मँगाने में व्यर्थ ही पाँच आने पाठकों को अधिक देने पड़ते हैं।

(२) कागज, छपाई की मँहगाई कई गुनी होजाने के कारण विवश होकर अखंड ज्योति का चन्दा बढ़ाना पड़ा है। सन् ४५ का चन्दा दो रुपया भेजना चाहिए। कोई सज्जन कमी के लिए न लिखें

(३) जो महानुभाव गत वर्ष बीच में ग्राहक बने थे उनको पिछले चन्दे में पूरे एक वर्ष तक पत्रिका मिलेगी। किन्तु आगे के शेष महीनों का चन्दा २) वार्षिक के हिसाब से देना होगा।

(४) वर्ष के बीच के महीनों से चन्दे का हिसाब रखने में हमें बहुत कठिनाई होती है। इसलिए जिन महानुभावों का हिसाब वर्ष के बीच में किसी महीने से होता है उनसे बहुत अनुरोध पूर्वक प्रार्थना है कि वह सन् ४५ के शेष महीनों का चन्दा २) वार्षिक के हिसाब से भेजदें। इससे हमें हिसाब रखने में बहुत सुविधा रहेगी।

(५) कन्ट्रोल की सरकारी आज्ञाओं के अनुसार आज कल कागज हम उतना ही ले पाते हैं जितने कि ग्राहक हैं इसलिए आपको अपना चंदा दिसम्बर में ही भेज देना चाहिए ताकि जनवरी का "सि... अंक" दिया जासके। गत वर्ष जिनका चंदा देर से आया था, वे विशेषाङ्क से वंचित रहे थे। इस वर्ष भी जो सज्जन देर से चंदा भेजेंगे गतवर्ष की भांति जनवरी के महत्वपूर्ण अंक से वंचित रह सकते हैं।

(६) अखण्ड ज्योति के संपादक आचार्य श्रीराम शर्मा की ३२ वीं जन्म गाँठ ता० ६ दिसम्बर को है। इस अवसर पर हर एक अखण्ड ज्योति के प्रेमी का कर्तव्य है कि अपने चंदे के साथ कम से कम एक नये ग्राहक का चन्दा और भेजवाने का प्रयत्न करे।

(७) साधारण लिफाफे में नोट आदि भूलकर भी न भेजना चाहिए। ऐसे लिफाफे आम तौर से रास्ते में गुम होजाते हैं। साथ ही यह कानूनी जुर्म भी है।

—मैनेजर 'अखण्ड ज्योति' मथुरा।

तारीख़ ६ दिसम्बर सन् ४४ को

आचार्य श्रीराम शर्मा की ३२ वीं जन्म गाँठ है।

इस अवसर पर—

अखंड ज्योति के ग्राहक बढ़ाने का प्रयत्न कीजिए। आपके थोड़े से प्रयत्न से अखण्ड ज्योति के ज्ञान यज्ञ में महत्व पूर्ण सहायता मिलेगी।

अखण्ड-ज्योति

धा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
हिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा॥

मथुरा १ दिसम्बर सन् १९४४ ई०

जन्म गांठ का सन्देश

आगामी ६ दिसम्बर ४५ को हमारे जीवन का ३२ वां वर्ष समाप्त होकर ३३ वां आरम्भ होता है। हमारे देश देशान्तरों में फैले हुए अनन्य आन्तरिक सुहृद बन्धुओं में से अनेकों ने इस जन्म तिथि के अवसर पर कुछ सन्देश मांगे हैं। उन्होंने लिखा है कि "केवल शिष्टाचार और प्रथा परिपाटी के कारण नहीं बरन् गंभीरता पूर्वक हम अनुभव करते हैं कि आपने अब तक जो अनुभव किए हैं जो ज्ञान संचय किया है, उसका सारांश हमें बतावें।" अपने परिवार के सदस्यों का आग्रह और अनुरोध हमने शिर मस्तक पर रखने में हमने सदैव अपना सौभाग्य समझा है। तदनुसार अपने विश्वासों का सारांश अपने प्रिय पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

अपने वर्तमान शरीर के ३२ वर्षों के जीवन में से बालकपन का थोड़ा सा समय छोड़कर शेष सारा समय अध्ययन, अभ्यास, साधन, शिक्षा सेवा और सत्सङ्ग में ही व्यतीत हुआ है। भारत वर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक कई बार यात्राऐं की हैं। देश के ऊँचे से ऊँचे महापुरुषों के निकट संपर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त किया है। विभिन्न भाषाओं के हजारों ग्रन्थों का अध्ययन किया है। धुरन्धर अनुभवी विद्वानों, ब्रह्मनिष्ठ महात्मा, तपस्वी, और योग विद्या के पारंगत तत्वदर्शियों से भेंट करने और उनकी कृपा प्राप्त करने के अवसर हमने पाये हैं। ब्रजभूमि मथुरापुरी में गुप्त प्रकट रीति से पधारते रहने वाले महात्माओं की सहज कृपा से अनायास अपने घर पर ही अनुग्रह पूर्ण दर्शन हो जाने के सुअवसर तो असंख्यों बार हमने पाये हैं। इसके अतिरिक्त संघर्ष मयी अशान्त दुनियां के बीचों बीच खड़े होकर उसकी भीतरी और बाहरी स्थिति का भी सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया है। इन सब आधार सूत्रों से निस्संदेह कुछ मानसिक बौद्धिक और आत्मिक सामिग्री हमारे पास एकत्रित हुई है. उस एकत्रित ज्ञान और अनुभव का सारांश अपने अन्तःकरण के गंभीरतल में से निकाल कर पाठकों के सामने उपस्थित कर रहे हैं।

हमने पिछले ३२ वर्ष में दो बातें ऐसी अमूल्य पाई हैं जो पूर्णतया प्रत्यक्ष सत्य से परिपूर्ण है, जिनके संबंध में आस्तिक और नास्तिक एक मत से सहमत हैं वे दो बातें यह हैं (१) पुरुषार्थ करो (२) दूसरों की सहायता करो। संसार में अनेक प्रकार के वैभव. सुख, सम्पदा. भोग, ऐश्वर्य मौजूद हैं, इस मर्त्यलोक का एक भाग ऐसा आनन्द मय है जिसकी तुलना में स्वर्ग को तुच्छ गिना जा सकता है। साथ ही दूसरा भाग ऐसा दुख मय है जिसके सामने बेचारा नरक भी कांपता है। आनन्द को, इस पृथ्वी के स्वर्गीय स्वर्णिम भाग को सब लोग चाहते हैं परन्तु यह भूल जाते हैं कि उसे किस प्रकार पाया जा सकता है। स्मरण रखने की बात यह है कि "शक्ति ही सुखों की जननी है" बल से, पुरुषार्थ से, विजय लक्ष्मी को, श्री सम्पदा को, प्राप्त किया जाता है। सुख और सौभाग्य केवल उनके लिए है जो शक्तिसम्पन्न हैं, बलवान हैं, पुरुषार्थी हैं, पराक्रमी हैं उद्योगी हैं। तन्दुरुस्ती. लक्ष्मी, कीर्ति, प्रतिष्ठा, बुद्धिमत्ता, विद्या, स्वर्ग, मुक्ति, आदि सम्पदाऐं पुरुषार्थ का फल हैं। ईश्वर के यहां न्याय है वह

मजूरी को देखकर फल देता है। भाग्य, प्रारब्ध, आदि और कुछ नहीं अपना ही पुरुषार्थ है। कल मेहनत की जाचुकी और आज मजूरी मिल रही है बस यही प्रारब्ध है। मुफ्तके माल की तरह इस दुनियां में एक तिनका भी किसी को नहीं मिलता, जो लेता है उसे अनेक गुना देना पड़ता है। इसलिए पहली शिक्षा जो हमने अपने जीवन में सूर्य के समान स्पष्ट और सत्य के समान स्वच्छ अनुभव की है वह यह है कि-शक्ति संचय करो अपनी भीतरी और बाहरी उन्नति के लिए हर घड़ी लगे रहो, पराक्रम को पुरुषार्थ को अपना जीवन मंत्र बनालो। यह बात कसकर गिरह बांधलो कि ईश्वर सिर्फ उनकी मदद करता है जो अपनी उन्नति के लिए आप प्रयत्न करते हैं।

दूसरी शिक्षा जो हमने अपने पिछले ३२ वर्ष में पाई है वह यह कि-दूसरों की सेवा करो। अपने घर वालों से, कुटुम्बियों से संबंधियों से, मित्रों से परिचितों से, अपरिचितों से सेवा मय, प्रेम पूर्ण, उदारता और त्याग से भरा हुआ बर्ताव करो। अपने लिए कम चाहो और दूसरों को अधिक दो। अपने अन्दर शक्ति उत्पन्न करो किन्तु उस शक्ति को भोग विलास में खर्च न करो वरन गिरे हुओं को उठाने में लगादो। स्वयं उन्नति करो पर उस उन्नति से अहङ्कार को तृप्त न करो वरन् दूसरों को उन्नत बनाने में लगादो। मनुष्य की सेवा ईश्वर की पूजा है। ईश्वर चापलूस, खुशामदी या रिश्वतखोर हाकिम नवाब या अमीर उमराव की तरह नहीं है जिसे अपनी प्रशंसा,स्तुति चापलूसी, खुशामद भेंट मिठाई टहल चाकरी की जरूरत हो। वह समर्थ है हम उसे भोजन न करावें तो भी वह भूखा न मरेगा, हम उसके सामने दीपक न जलावें तो भी उसकी आँखें सब कुछ देखने में समर्थ हैं हम उसकी महिमा बारम्बार न गावें तो भी उसकी महिमा सर्व विदित है। वह इन बातों की जरा भी परवाह नहीं करता, और न इन कर्मकाण्डों को देखकर किसी से खुश या ना खुश होता है। परमात्मा को वे प्यारे हैं जो उसकी आज्ञा मानते हैं। परमात्मा की आज्ञा मनुष्य के लिए क्या है? इसी एक प्रश्न का विवेचन करने के लिए हमने अब तक निरंतर विचार किया है, एक से एक ऊँचे महापुरुषों से परामर्श किया है। इस प्रश्न के उत्तर में हमें सर्व सम्मति से एक ही बात बताई गई है "स्वयं अपनी उन्नति करो और उस उन्नति को दूसरों के लिए खर्च करो।"

हर एक दृष्टि से हर एक क्षेत्र में हमने एक ही बात पाई है जो शारीरिक दृष्टि से बलवान है उसको शारीरिक सुख हैं जो मानसिक दृष्टि से बलवान है उसको सांसारिक सुख है, जो आत्मिक दृष्टि से बलवान है उसको आन्तरिक सुख है। सुख और बल एक ही वस्तु के दो पहलू हैं दोनों एक दूसरे के साथ अनन्य रूप से जुड़े हुए हैं। जो बलवान हैं वे सुखी रहेंगे स्वर्ग भोगेंगे जो निर्बल हैं उनके लिए दुख और नरक ही निश्चित है। प्रकृति का, परमात्मा का यह बड़ा कठोर नियम है यह दया और निर्दयता के साथ ही न्याय से परिपूर्ण है। जो भी है, पर है। सत्य, अटल, प्रत्यक्ष और सर्वत्र दिखाई देने वाले, इस नियम को-ईश्वरीय आदेश को-हमें ठीक प्रकार अनुभव करना है और तदनुसार आचरण के लिए तत्पर होना है।

पाठको! फिर सुनो-हमारे ३२ वर्ष के अनुभव ज्ञान और अध्ययन के सारांश को ध्यान पूर्वक सुनो और उचित जँचे तो उसे गाँठ बाँध लो। शक्ति सञ्चय के लिए, आत्म उन्नति के लिए, भीतरी और बाहरी योग्यताऐं बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करना आप का सब से पहला काम होना चाहिए इसके बाद दूसरा काम यह है अपनी उपार्जित शक्तियों को भोग और अहङ्कार को पूर्ति में नहीं वरन् मनुष्य जाति को ऊँचा उठाने में सत् की ओर लेजाने में खर्च करो। बढ़ो और बढ़ाओ-उठो और उठाओ-तरो और तारो-यही हमारा अपनी बत्तीसवीं वर्ष गाँठ के उपलक्ष में संदेश है।

प्रत्येक उत्तम वस्तु पर तुम्हारा अधिकार है?

(डा० रामचरणजी महेन्द्र एम० ए० डी० लिट्)
एफ० बी० टी० (लदन)

संसार में ऐसी कोई दुर्लभ वस्तु नहीं जो तुम्हारे योग्य न हो, या जिस पर तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार न हो। तुम अपनी सङ्कल्प की शक्तियों को आदेश दो (Make a Suggestion) कि मैं एक ईश्वरीय तत्त्व से-जिसका सम्बन्ध मन से है-तादात्म्य रखता हूं, अतएव उससे उत्पन्न होने वाली प्रत्येक उत्ताम वस्तु का मैं पूरा पूरा हकदार हूं-वारिस हूं। इच्छाशक्ति के लम्बे चौड़े हाथों से मैं उसे अवश्य प्राप्त कर सकता हूं।

हम प्राय: ऐसे व्यक्तियों को देखते हैं जो व्यर्थ में अपने आप को तुच्छ एवं नगण्य समझा करते हैं। जिस वस्तु के चिंतन से हानि होती है निरंतर उसी में बल का क्षय करते रहते हैं। प्रतिक्रिया स्वरूप (reaction) परिणाम घातक होता है।

जीवन के प्रधान नियमों में कदाचित् प्रमुख नियम यही है कि मनुष्य मन, विचार आकांक्षा का सदुपयोग सीखे। यह अनुभव करे कि वह परम शक्ति सम्पन्न एक सुदृढ़ चैतन्य आत्म पिंड है। संसार की समस्त उत्कृष्टतम वस्तुओं पर उसका पूर्ण अधिकार है। धन सम्पत्ति, मान-सम्भ्रम, पदाधिकार, धर्म, मोक्ष इत्यादि कुछ भी क्यों न हो उससे विमुख नहीं है वे उसी के लिए सृजित हैं। अतएव उसे एक दिन अवश्यमेव प्राप्त होंगी।

कितने ही पुरुष मन की आकांक्षाओं को मृत प्राय कर डालते हैं। मन: केन्द्र में अभिलाषित वस्तु के प्रवेश करते ही यह समझने लगते हैं कि वह हमसे दूर की वस्तु है, हमें उपलब्ध न होगी। ऐसी मनोधारा अत्यन्त घातक है। प्रत्येक उत्ताम वस्तु सर्व प्रथम मनःकेन्द्र में प्राप्त होती है ततूपश्चात वस्तु जगत् में उपलब्ध होती है। अत: हमें चाहिए कि अपनी आकांक्षाओं का अभिनय (Acting) करें। तत्सम्बन्धी विचारों को मनमें उदारता पूर्वक प्रवेश करने दें, अभी से उनका अभ्यास प्रारम्भ कर दें, उसे प्राप्त हुआ (Already achieved) देखने की आदत बना लें।

नैपोलियन ने चिट्ठी लाने वाले सवार को जो उत्तर दिया था वह आत्म-तत्त्व-विद्या के प्रेमियों के लिए बड़े ही महत्त्व का है। नैपोलियन को चिट्ठी देने के लिए वह अश्वारोही वायु वेग से अग्रसर हुआ। अश्व पूर्ण क्लान्त होचुका था। सवार ज्यों ही नैपोलियन के निकट पहुंचा और घोड़े से नीचे उतरा, थका हुआ घोड़ा त्यों ही पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। नैपोलियन ने पत्रोत्तर तुरंत लिखकर सवार को दिया और निर्देश किया, 'तुम्हारा घोड़ा मर गया है, अतएव तुम मेरे इस विशेष अश्व पर सवार होकर जाओ और सेनापति को हमारा पत्र दो।"

अश्वारोही घबरा गया। क्या ऐसे ऊँचे घोड़े पर बैठने का आदेश सत्य है? उसने विस्मय पूर्वक निवेदन किया, "महाराज! हम जैसे निम्नश्रेणी के तुच्छ सेवकों को आप के घोड़े पर बैठना उचित नहीं है।" यह कहते २ भृत्य ने सर झुका लिया। नैपोलियन ने उत्तर दिया—

"दुनियाँ में ऐसी कोई भी उत्कृष्ट वस्तु नहीं, जिस पर फ्रान्स के एक छोटे से छोटे सैनिक का अधिकार न हो या उसे प्राप्त न हो सके। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सकता है।"

तुम किस अवस्था में आत्म-विस्मृति किए हो? तुम्हारा वास्तविक स्वरूप क्या है? तुम क्यों इन प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार नहीं करते। यदि कोई तुम्हें कमजोर, मूर्ख, डरपोक कहता है तो तुम क्यों उसे स्वीकार कर लेते हो? तुम क्यों उसका उत्तर नहीं देते और कहते कि "मैं शक्ति सम्पन्न ज्योतिर्मय आत्म पिंड हूँ। एक महान् शक्ति का पुत्र

हूँ। ऐसा कोई पद नहीं जिसके योग्य मैं न हूं। संसार में ऐसी कोई अलभ्य वस्तु नहीं जिस पर मेरा स्वत्व न हो।"

जब कभी तुम्हारे मन में बुजदिली के विचार प्रवेश करने लगें तो पुरुषोचित साहस से गर्जना करो कि "मैं निश्चिन्त हूं साहसी हूं और सब का स्वामी हूं। प्रत्येक उत्कृष्ट वस्तु पर मेरा अधिकार है।"

ऐसे व्यक्ति संसार में अतिन्यून हैं जिनमें आत्म-उत्तेजना है और निज शक्ति में विश्वास है जो संसार की टीका टिप्पणी की तनिक भी परवाह नहीं करते और सदैव शुभ प्रेरणा में अग्रसर हुआ करते हैं।

जो अपनी बेकदरी करते हैं वे पापी हैं क्योंकि वे परमेश्वर स्वरूप परम-आत्मा की निन्दा करते हैं, कारण, मनुष्य ईश्वर की प्रतिमूर्ति है। ईश्वर में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं, सीमा बंधन नहीं, प्रत्युत समृद्धि की विपुल सम्पदा भरी पड़ी है। ईश्वर का आदेश है कि पूर्ण बनो जैसा कि मैं हूं। अतः कभी अपने आप को नीच, दीन, दुःखी, दरिद्री, रोगग्रस्त न समझो। प्रत्युत उत्साह पूर्वक कहो और गर्व से छाती फुलाकर कहो कि प्रत्येक उत्तम वस्तु पर मेरा अधिकार है। कोई मुझ से वह अधिकार हरण नहीं कर सकता। इस प्रकार मन को भद्दी वस्तुओं से हटाकर सुन्दर और शिवत्व से परिपूर्ण सुमनोहर वस्तुओं पर केन्द्रित करना, विरोध से हटाकर एक्य (Unity) में सलग्न करना, मृत्यु के विचार से हटाकर दिव्य जीवन के रहस्य में केन्द्रित करना एक बहुत उत्कृष्ट कला है। इस कला में पारंगत बनने का प्रयत्न कीजिए।

पाठकों! आत्म तत्व की प्राप्ति कर संसार की प्रत्येक उत्कृष्ट वस्तु पर अपना अधिकार होने का प्रमाण दो। दिखलादो कि तुम साधारण नहीं हो, नगण्य नहीं हो, हेय नहीं हो, केवल बात ही बात नहीं करते हो प्रत्युत उत्तम वस्तुओं के स्वामी हो। उनकी प्राप्ति के निमित्त सद् सङ्कल्प करते हो, फिर प्राणपण से चेष्टा कर उसे प्राप्त भी कर लेते हो।

मन खोलकर निर्भयता पूर्वक कह डालो कि मैं अमुक वस्तु की प्राप्ति की आकांक्षा रखता हूं, उस की प्राप्ति में सन्देह, शक, शुबा किंचित् मात्र भी नहीं रखता हूँ। मुझे अमुक वस्तु की आवश्यकता है। अतः चाहे कुछ भी हो मुझे उस से अपना सम्बन्ध स्थापित कर ही लेना है। कोई मुझे उससे रोक नहीं सकता। मैं अपने सङ्कल्पों, महत्त्वकांक्षाओं, युक्तियों के प्रति सच्चा हूँ, दृढ़ हूँ अपने मनोरथों पर स्थायी रहने वाला दृढ़ निश्चयी हूं निज परिस्थितियों का स्वामी हूं परमात्म सत्ता से अभेद संबंध रखने वाला अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा हूं, निराशा, निरुत्साह एवं निर्वेदना के क्षयी विचारों को सर्वदा के निमित्त तिलांजली दे चुका हूँ। मैं आत्म तत्त्व में पूर्णता से स्थिति हूं। सब अवस्थाओं का स्वामी हूं। अतएव मेरी शक्ति में किसे सन्देह हो सकता है।

उत्तमता ईश्वरीय तत्व है अतएव उसके सान्निध्य की आकांक्षा उस परम तत्व को निज शरीर में प्रकट करता है। जो जितना ही उत्तम-तत्व के समीप अग्रसर होगा तदानुकूल ही ईश्वरीय अंश अपने आप में प्रकट करेगा। अनेक व्यक्ति जीवन को बेगार सी समझ कर कुढ़ते कुढ़ते जीते है वस्तुतः ऐसे व्यक्ति निम्न श्रेणी के हैं क्योंकि वे उत्तमत्ता जैसे ईश्वरीय अंश की अवहेलना करते हैं।

तुम जो कार्य हाथ में लो उस में उत्कृष्टता प्रकाशित करो। उत्कृष्टता को अपना जयचिन्ह (Landmark) बनालो। जो पुरुष संसार में अपना नाम उन्नत कर सके हैं निस्सन्देह उन्हें उत्कृष्टता से परम प्रीति थी।

तुम्हारा प्रत्येक कार्य उत्तमता लिए हुए हो। पूरा कार्यक्रम उत्तमता से परिपूर्ण हो। भोजन करो, तो उत्तमता (स्वच्छता) से हो, रहन सहन उत्कृष्टता पूर्ण हो, टहलना, फिरना, बोलना-जीवन

की प्रत्येक क्रिया अत्यन्त सावधानी से उत्तम रीति से सम्पन्न हो। उसमें सद्व्यवस्था हो, क्रम हो, उत्तमता हो। गीताजी का प्रवचन है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचनः।

इन अमूल्य वचनों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह उत्तम रीति के कर्म करने का आग्रह करे। जो जितना ही उत्तमता के निकट आयेगा उतना ही परमेश्वर के सन्निकट होगा। अतः जो कार्य करो उसमें लक्ष्य उसमें प्रधान लक्ष्य उत्कृष्टता सम्पादन ही रहे। इसी महत् नियम द्वारा पालनकर्त्ता को उत्कृष्ट फल के दर्शन होते हैं। यह मत विचारो कि हमें उत्कृष्टता के अनुपात का पुरस्कार प्राप्त नहीं हो रहा है अतः काम क्यों उत्तम रीति से करें? स्मरण रहे उत्तम कृत्य स्वयं ही फल है। (Good work is an end in itself) ऐसा करने से उत्कृष्ट तत्व की अवश्य सिद्धि होगी।

अपना प्रत्येक कार्य उत्कृष्टता से करने से जो आनन्द लाभ होता है उसका वर्णन असंभव है। आत्म तत्व के पुजारी! यह कदापि अनुभव न करो कि तुम कार्य को सर का बोझ समझ रहे हो, या वह बेगार है। नहीं. तुम उत्कृष्टता से कार्य करने के निमित्त बने हो। उत्कृष्टता के भ्रमर हो अतएव तुम उत्कृष्ट रस का ही पान करो।

लड़कपन स्वर्गीय आनन्द का समय है। जवानी धन कमाने का समय है। किन्तु बुढ़ापा केवल संचित किये हुए धन से सुख ही प्राप्त करने का समय नहीं है, बल्कि ईश्वर का भजन करने का भी समय है।

× × × ×

पिता वह नहीं, जिसने तुम्हें केवल पैदा कर दिया, बल्कि वास्तविक पिता वह है, जिसने तुम्हें सचमुच मनुष्य बनाने का तन-मन-धन से प्रयत्न किया।

× × × ×

स्त्री पुरुष में संघर्ष की जरूरत नहीं!

(आचार्य ध्रुव)

पिछले दस वर्षों से जिन समस्याओं को स्त्रियाँ सुलझाने का प्रयत्न कर रही हैं और जिन्हें वे इस नवयुग में आगे बढ़ाएंगी, वे स्त्रियों और पुरुषों दोनों के समान हित की समस्याएं हैं। वास्तव में भारतीय पुरुष और भारतीय स्त्री नाम की कोई दो अलग वस्तुएं नहीं हैं, जो भिन्न भिन्न टापुओं में रहती हों। वे एक ही धरातल पर रहते हैं, उनके एक से हित हैं और एक से जीवन हैं। कार्य के इस पहलू पर मेरे जोर देने का कारण यह है कि मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि यहाँ पास होने वाले किसी भी प्रस्ताव में सही या गलत का भाव स्त्रियों बनाम पुरुषों के आधार पर न प्रकट किया जाय, बल्कि सम्पूर्ण समाज हित के आधार पर प्रकट किया जाय। दुनियां में काफी तरह के युद्ध मौजूद है, जैसे धार्मिक युद्ध- साम्राज्यवादी युद्ध श्रेणी युद्ध आदि। हमें अब स्त्री पुरुष सम्बन्धी युद्ध पैदा करके इन युद्धों की संख्या न बढ़ानी चाहिए। मैं यह कह देना चाहता हूं कि अब तक स्त्री पुरुष युद्ध भारत वर्ष में नहीं है और न निकट या दूर भविष्य में उसके पैदा होने का ही डर है, अगर हम अपने जोश के वेग में यह न भूल गए कि शान्ति पूर्ण घर सभ्यता और संस्कृति का सर्वोच्च चिन्ह है। मैं इतना मूर्ख नहीं हूं जो यह समझ लूँ कि कब्रिस्तान की शान्ति वास्तविक शान्ति है। लेकिन यह मैं जरूर समझता हूं कि रोगी के रोग दूर करने के कई उपाय होते हैं जो सब एक से नहीं होते।

स्त्रियों की उन्नति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे पुरुषों से संघर्ष ही करें, यह कार्य प्रेम से भी हो सकता है।

गंगाजल की महिमा ।

गङ्गाजल में ऐसे अद्भुत गुण हैं जिन पर केवल हिन्दू ही नहीं अन्य मतावलम्बी भी मुग्ध हैं। इतिहास बताता है कि सभी धर्म वाले गङ्गा के उपयोग से हिन्दुओं की भाँति लाभ उठाते रहे हैं।

चौदहवीं शताब्दी में इब्न बतूना नामक यात्री भारत में आया था। उसने अपने यात्रा वर्णन में लिखा है कि--बादशाह मुहम्मद तुगलक के लिए दौलताबाद से गङ्गाजल जाया करता था, "आईने अकबरी" नामक इतिहास ग्रन्थ में अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर गङ्गाजल को 'अमृत' कहा करते थे, घर में हों या सफर में हमेशा वे गङ्गाजल ही पीते थे। जब अकबर आगरा या फतेहपुर सीकरी रहते थे तब गङ्गाजल सोरों से आता था और जब दिल्ली या पंजाब की तरफ जाते थे तो हरद्वार से आता था। भोजन के काम में जो पानी लिया जाता था उसमें भी गङ्गाजल मिला होता था।

फ्रान्सीसी यात्री बर्नियर ने अपने 'यात्रा विवरण' में लिखा है कि–'औरङ्गजेब चाहे दिल्ली रहते थे या आगरा उनके खाने पीने की चीजों में गङ्गाजल जरूर रहता था। सफर में भी वह साथ जाता था। अकेले बादशाह ही नहीं दरबार के और अफसर भी गङ्गाजल स्तैमाल करते थे।' एक दूसरे फ्रान्सीसी यात्री टैवर्नियर जो मुसलमानी शासन काल में भारत भ्रमण करने आया था उसने भी लिखा है गंगाजल के गुणों से प्रभावित होकर बहुत से बादशाह और नवाब उसे बराबर प्रयोग करते थे। ब्रिटिश सेना के कप्तान एडवर्ड मूर जिन्होंने टीपू सुलतान के साथ युद्ध में भाग लिया था लिखा है कि शाहनवर के नवाब सिर्फ गंगाजल ही पीते थे। 'रियाजु-स-सलातीन' नामक ग्रन्थ में गुलामहुसेन ने लिखा है कि-स्वाद, मधुरत्न और हल्केपन में गंगाजल के मुकाबले कोई जल नहीं, उससे मुसलमान भी वैसा ही लाभ उठाते हैं जैसे कि हिन्दू।

टैवर्नियर ने लिखा है कि–हिन्दू लोग विवाह शादियों के अवसरों पर अपने अतिथियों को गंगाजल भी पिलाते हैं। जो जितना अधिक गंगाजल पिला सकता है वह उतना ही अमीर समझा जाता है। क्योंकि दूर देश से उसे मँगाने में बहुत खर्चा पड़ता है। मराठी पुस्तक "पेशवाईच्या सावलींत" से पता चलता है कि गढ़मुक्तेश्वर और हरद्वार से पेशवाओं के लिए गंगाजल जाया करता था। एक बहँगी गंगाजल पूना तक पहुँचने में बीस रुपया खर्च होजाते थे।

बौद्ध लोग भी गंगा का अत्यंत आदर करते थे। जब भूटान का युद्ध समाप्त होगया तो तिब्बत के तूशीलामा ने एक दूत भेजकर वारेन होस्टिंग्स से गंगा किनारे कुछ जमीन माँग ली और वहाँ पर एक मन्दिर तथा मठ बनवाया। लामा का कहना था हिन्दुओं की ही तरह बौद्ध भी गंगाजी को परम पुनीत मानते हैं।

प्राचीन काल में गंगाजल विदेशों में भी काफी मात्रा में जाया करता था। क्योंकि भारत से बाहर के लोग भी उसके अद्भुत गुणों से परिचित होचुके थे। स्वास्थ्य को बढ़ाने के और रोगों को नाश करने की आश्चर्य जनक शक्ति गंगा के पानी में है। अब भी हरद्वार और ऋषिकेश से गंगाजल डिब्बों में भर कर पार्सलों द्वारा दूर देशों के लिए भेजा जाता है।

गंगा के द्वारा कृषि की सिंचाई तथा नावों द्वारा व्यापार होने के कारण उसका असाधारण अधिक महत्व था। गंगा के कछार पर रहने वाली जनता हमेशा खुशहाल रहती थी क्योंकि संसार के जितने उपजाऊ भूखंड हैं उसमें गंगा का कछार सर्वश्रेष्ठ है यही कारण है कि भारतवर्ष की चालीस करोड़ जनता का एक तिहाई से भी अधिक भाग अर्थात् करीब १५ करोड़ मनुष्य गंगा के कछार में रहते हैं। रोगों का आक्रमण भी इस भूखंड पर सब से कम होता है। गंगा की महिमा अपार है।

———

सूर्य-सेवन से रोग मुक्ति।

(एम० एस० मोसवर्न)

साहित्य सेवियों को अपने कार्य में कुछ ऐसा चस्का होता है कि वे अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बिना सामर्थ्य से बहुत अधिक कार्य करते रहते हैं। मुझे भी ऐसा ही चस्का था, अध्ययन और साहित्य निर्माण में इतनी दिलचस्पी थी कि निरंतर कम से कम बारह घंटा प्रति दिन को औसत से काम करता था. आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण पौष्टिक भोजन मिल नहीं पाता था। सामर्थ्य से अधिक शक्तियों का खर्च करते करते आखिर में क्षय रोग का शिकार हो गया।

तपैदिक के कीटाणु मेरे फेफड़े को गलाने लगे। हलका हलका बुखार रहने लगा। डाक्टरों की चिकित्सा आरंभ हुई। पैकिटों के पैकिट गोलियाँ, बोतलों की बोतलें दवाइयां, दर्जनों इंजेकशन मेरे शरीर में प्रवेश कर गये। डाक्टरों की फोस और दवाओं की कीमत चुकाते चुकाते मेरा घर खाली हो गया। परन्तु लाभ का कोई चिन्ह नजर न आता था दशा दिन पर दिन बिगड़ती चली जा रही थी। मुझे ऐसा मालूम देने लगा मानों मृत्यु अपना विकराल मुँह फाड़कर मेरी ओर बढ़ती चली आरही है। छोटे छोटे बच्चों को निर्धन और असहाय अवस्था में छोड़कर चले जाने से उनकी जो दुर्दशा होगी उसका स्मरण करके मेरी अन्तरात्मा में बड़ी वेदना होने लगी। जिन ग्रन्थों को मैं अपने जीवन में पूरा करना चाहता था वे सब अधूरे पड़े रह जायँगे यह सोच सोचकर मैं अत्यधिक दुखी रहने लगा।

एक दिन मेरे मित्र विकवेन मुझे देखने आये। उन्होंने जब मुझे इस दशा में देखा तो बहुत दुखी हुए। मि० विकवेन प्रकृति विज्ञान के अन्वेषक थे। उन्होने बताया कि सूर्य किरणों में क्षय के कीटाणुओं को नाश करने की ऐसी अद्भुत शक्ति है जैसी संसार की किसी भी दवा में नहीं है। यदि मैं सूर्य की किरणों का सेवन करूँ तो इस दशा में भी मृत्यु के मुख से निकल सकता हूं। उन्होंने सूर्य सेवन की सभी विधि भी मुझे समझा दी।

मैं अब भी बच सकता हूं, यह आशा मेरे लिए इतनी महत्व पूर्ण थी कि उसके बदले में बड़े से बड़ा काम करने को भी मैं तैयार था। दूसरे ही दिन मैं शहर के बाहर खुली आबहवा वाले स्थान एरिज़ोना के लिए रवाना हो गया। यह स्थान ऐसा था जहाँ शहर का धुआं और गर्द गुबार नहीं पहुंचाता था सूर्य की किरणें बिना किसी रुकावट के उस स्थान पर पड़ती थीं। हर रोज दोपहरी की कड़ी धूप को छोड़कर ढाई घंटे सबेरे और ढाई घण्टे शाम को मैं हलकी धूप का सेवन करने लगा। सफेद रंग का एक बारीक सा कपड़ा शरीर पर पहनकर धूप में बैठा या लेटा रहता। शिर को ढके रहना जरूरी था। इसके सिवाय शरीर के हर एक अंग को बारी बारी लौट पलटकर धूप में सेंकता। जब धूप हलकी होती तो बिलकुल नंगे बदन सूर्य सेवन करता। पेट और छाती को अधिक धूप लगाता था। इससे त्वचा के छेद खुलकर खूब पसीना निकलता था। सूर्य सेवन के बाद बन्द कमरे में साबुन की सहायता से खूब रगड़ रगड़ कर स्नान करता। आम तौर से क्षय में स्नान नहीं कराया जाता परन्तु मेरे मित्र ने बताया था कि कमजोर आदमी को स्नान के समय हवा के झोंके से बचाव कराके स्नान करना चाहिए। स्नान से हानि नहीं वरन् लाभ ही होता है।

इस प्रकार करीब तीन मास मैंने सूर्य सेवन किया। दिन दिन मेरी हालत सुधरती गई और ती महीने में मैं पूर्ण स्वस्थ होगया। इस प्रकार सूर्य क सहायता से मैं मृत्यु के मुख में से निकल आया मेरा विश्वास है कि हर एक रोग से चाहे व कितना ही कठिन हो सूर्य किरणों का समुचित सेवन करने से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है।

विचारों का परिणाम !

यजुर्वेद के ब्राह्मण में लिखा है—"यन्मसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तदकर्मणा करोति, यद् कर्मणा करोति तदभि सम्पद्यते ॥"

अर्थात्—मनुष्य जैसे विचार करता है वैसी ही वाणी बोलता है। जैसे वचन बोलता है वैसे ही कर्म करता है, जैसे कर्म करता है वैसे ही उसकी गति होती है।

इस मंत्र में बताया गया है कि मनुष्य की जो सद् असद् गति होती है। उन्नति अवनति होती है, सुख सम्पत्ति या दुख दारिद्र मिलता है। उस सुख दुख का गति का-कारण कर्म है। जो जैसा करता है उसे वैसा फल मिलता है। यह कर्म अचानक नहीं होजाता, कर्म करने की प्रेरणा उसे वाणी से प्राप्त होती है। खुद कहने से या दूसरों की सुनने से प्रेरणा मिलती है। कहने सुनने से कर्म की ओर प्रगति होती है, परन्तु वह कहना सुनना जिसमें प्रेरक शक्ति भरी होती है मन की भीतरी हिस्से से आती है। विचार और सङ्कल्प ही वह तत्व है जिस से प्रेरणा मिलती है, विचार करने, कहने सुनने की इच्छा होती है और फिर कर्म करने में प्रवृत्ति हो जाती है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि जैसे गति को-फल को-हम लोग प्राप्त करते हैं उसका मूल कारण-प्रारंभिक स्रोत विचार है। विचार वह बीज है जो कर्म रूप वृक्ष के रूप में बढ़ता है और उसके मीठे कडुए फल हमारे सामने उपस्थित हैं।

जिस प्रकार बीज और फल का आपस में अत्यन्त निकट का संबंध है उसी प्रकार विचार और दुख सुख का संबंध है। जिसके मनमें बुरे विचार काम कर रहे हैं, दुर्भावनाऐं भरी हुई हैं उसको वाणी से, आकृति से उसी प्रकार के भाव प्रकट होंगे। कौवे की बोली सुनकर जैसे दूसरे कौवे इकट्ठे हो आते हैं उसी प्रकार दृश्य और अदृश्य सहयोगी जमा होजाते हैं और फिर उसी दिशा में कार्य आरंभ होजाता है। चोरी, व्यभिचार, ठगी, आदि के जो भाव मन में घुमड़ते हैं उनके कार्य रूप में परिणत होने का मार्ग निकल ही आता है। जब बुरे कार्य आरंभ हुए तो जेल, बदनामी, शत्रुता, धननाश, कलह, विपत्ति अवनति आदि के दृश्य प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगते हैं। वह दुखदायी, विपत्ति मय परिस्थितियों में फँस जाता है। इसके विपरीत जिसके मनमें सद् विचारों का आरंभ होता है उसे वैसे ही वाणी और चेष्टा होती हैं तदनुसार अच्छे सहायक और अवसर मिलते हैं जिनसे अच्छे काम करना सुलभ हो जाता है। यह निश्चय है कि अच्छे काम करने वाला अच्छी गति को, उन्नति और समृद्धि को प्राप्त करता है।

उपरोक्त श्रुति पर हम जितनी गंभीरता से विचार करते हैं उतना ही स्पष्ट होता जाता है कि भले बुरे परिणामों का मूल कारण विचार है। जो मनुष्य इस संसार में सुखदायक परिस्थितियों को प्राप्त करना चाहता है उसे जड़ तक पहुंचकर यह पता लगाना चाहिए कि सुखदायक परिणाम कैसे प्राप्त हो सकता है। श्रुति ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि सुख शान्ति की इच्छा है तो सद्विचारों को अपनाओ यदि दुख और विपत्ति भोगना चाहते हो तो कुविचारों में डूबे रहो। जैसे विचार करोगे वैसी हो गति को प्राप्त करोगे।

हम लोगों को विचारों का महत्व समझना चाहिए। सब प्रकार की उन्नति सद्विचारों द्वारा ही होनी संभव है। मस्तिष्क के नियंत्रण में सारा शरीर है। विचारों के अनुसार ही शरीर के विभिन्न कल पुर्जों की योग्यता और शक्ति बनती है उसी के द्वारा जीवन संग्राम में सफलता प्राप्त की जा सकती है। सात्विक विचारों को मन में स्थान देने से गुण, कर्म, स्वभाव सभी ऐसे आकर्षक होजाते हैं कि सब लोग सहायता करने के लिए दौड़ पड़ते हैं। इस प्रकार शुद्ध विचारों वाले मनुष्य का जीवन सुख और समृद्धि से परिपूर्ण होजाता है।

———

चहरे का सौन्दर्य बढ़ाना।

चहरा सौन्दर्य का प्रधान स्थान है। जिसके चहरे पर कोमलता चमक तथा स्निग्धता होती है वह सुन्दर मालूम होता है और जो चहरा रूखा, निस्तेज, तथा सुस्त होता है वह अच्छी बनावट का होने पर भी कुरुप दिखाई पड़ता है। यदि झाँई, मुँहासे, फुन्सियाँ कील एवं झुर्रियों का पड़ना शुरू होजाय तब तो रहा सहा सौन्दर्य भी चला जाता है।

अधिक चिन्ता शोक पेट को खराबी, रक्त की अशुद्धता, निराशा. मनहूस स्वभाव, विषय वासना की ओर अधिक झुकाव, आलस्य या अत्यधिक परिश्रम चहरे की कुरुपता का प्रधान कारण है। क्रोध, ईर्षा एव खुदगर्जी की अधिकता से भी मुखाकृति बिगड़ जाती है। ऐसी ही कारण की प्रतिक्रिया से चेहरा मुहास, झुर्री, फुन्सी आदि से लटककर कुरुप होने लगता है। यदि उपरोक्त बातों से बच व रखने का ध्यान रखा जाय तो चहरे की कुरुपता से मनुष्य बचा रह सकता है और यदि कभी मुँह पर यह उपद्रव दिखाई देने लगें तो उपरोक्त बातों में सुधार कर देने से उनका आसानी से सुधार हो सकता है।

कुछ उपाय भी ऐसे हैं जिनकी सहायता से चहरे की कुरुपता को हटाया जा सकता है। चहरे को मालिस इन प्रकार के उपायों में प्रधान है। प्रातः काल नित्य कर्म से निवृत्त होकर सेह्य गरम पानी में एक खुरदरे तौलिये का भिगाकर धीरे धीरे चहरे के हर एक भाग को रगड़ना चाहिए। पाँच पाँच मिनट बाद तौलिये को निचोड़ कर फिर दुबारा गरम पानी में डुबो लेना चाहिए। यह क्रिया पन्द्रह मिनट तक करनी चाहिए। इसके बाद पीली सरसों का शुद्ध तेल लेकर चहरे के हर एक भाग पर उसकी मालिस करनी चाहिए। तेल की मालिस केवल उंगली के पोरुओं से नहीं पूरी हथेली और पूरी उंगलियों से करनी चाहिए। हथेली पर थोड़ा तेल लेकर दोनों हाथों की हथेलियों और उंगलियों तक उसे फैला लेना चाहिए तब फिर उससे मालिश करनी चाहिए। मालिश में एक बात का ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिए कि नीचे की ओर से ऊपर की ओर जब मालिस की जाय तो दवाव अधिक रहे और जब ऊपर से नीचे की ओर हाथ आवे तो हाथ का दवाव हलका रहे। ऐसा करने से नीचे की ओर लटकी हुई त्वचा अपने स्थान पर सरक जाती है। ऊपर से नीचे की ओर दवाव देने से त्वचा के लटकने की आशङ्का रहती है।

मालिश करने के बाद उंगलियों से चहरे के हर भाग को हलके हलके थप थपाना चाहिए। दोनों हाथों से दोनों ओर थप थपाने में सुभीता रहता है। कनपटी के स्थान को थप थपाने से बचा देना चाहिए या बहुत ही हलके हलके थपथपाना चाहिए। कारण यह है कि कनपटी वह स्थान है जहाँ से मस्तिष्क के कोमल तन्तु निकट हैं और नेत्रों की अन्तःशिराऐं भी पास पड़ती हैं। इस स्थान पर जरा अधिक आघात लगे तो हानि होने की सम्भावना रहती है।

पानी से रगड़ना, तेल की मालिस और थपथपाना यह तीनों क्रियाऐं मिलाकर आध घण्टे नित्य करनी चाहिए। पन्द्रह मिनट रगड़ना, दस मिनट मालिस और पाँच मिनट थपथपाना। इसके बाद ताजे पानी से मुँह धो डालना चाहिए और कुछ देर दर्पण के सामने खड़े होकर अपने चहरे का अवलोकन करते हुए "हमारा सौन्दर्य बढ़ रहा है" ऐसी दृढ़ भावना करनी चाहिए। कभी कभी उवटन भी करना चाहिए, सप्ताह में एक बार संतरे का टुकड़ा भी चहरे पर रगड़ देना चाहिए। लापरवाही से कुरुपता का अधिक संबंध है। यदि मनुष्य सावधान रहे और उपरोक्त रीति से अपनी सुन्दरता बढ़ाने का प्रयत्न करता रहे तो निस्संदेह झुर्री, झाइ, मुहास आदि दूर हो सकते हैं और चहरे के सौन्दर्य में बहुत उन्नति होसकती है।

गृहस्थ योग।

(गताङ्क से आगे)

गृहस्थ आश्रम की निन्दा करते हुए कोई कोई सज्जन ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि—"घर गृहस्थी में पड़ना माया के बंधन में फँसना है।" उनकी दृष्टि में घर गृहस्थी माया का पिटारा है और बिना गृहस्थी रहना स्वर्ग की निशानी है। परन्तु विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपरोक्त कथन कुछ विशेष महत्व का नहीं है। कारण यह है कि माया का बंधन बाहरी वस्तुओं या बाहरी मनुष्यों में नहीं वरन् अपनी मनोवृत्तियों में है यदि मन अपवित्र है, काम, क्रोध, लोभ, मोह से भरा हुआ है तो जो बातें गृहस्थ में होती हैं वही सन्यास में घर से बाहर भी हासकती है। हमने देखा है कि बहुत से बाबाजी कहलाने वाले महाराज भिक्षा माँग माँगकर धन जोड़ते हैं, मरने पर उनके पास प्रचुर धन राशि निकलती है। हमने देखा है कि गृह-विहीन लोगकी इन्द्रियांभी लोलुप होतीहै,लोलुप शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श में रुचि अरुचि प्रकट करते हैं, उनके आकर्षण से आकर्षित होते हैं। अपनी वस्तुओं से कुटी, वस्त्र, पुस्तक, पात्र, शिष्य, साथी आदि से ममता रखते हैं। यही सब बातें दूसरे रूप में गृहस्थों में होती हैं।

वैराग्य, त्याग, विरक्ति, इन महातत्वों का सीधा संबंध अपने मनोभावों से है। यदि भावनाऐं सङ्कीर्ण हों, कलुषित हों, स्वार्थमयी हों तो चाहे कैसी उत्तम सात्विक स्थिति में मनुष्य क्यों न रहे मन का विकार वहां भी पाप की दुराचार की स्पष्ट करेगा। यदि भावनाऐं उदार एवं उत्तम हैं तो अनमिल और अनिष्ट कारक स्थिति में भी मनुष्य पुण्य एवं पवित्रता उत्पन्न करेगा। महात्मा इमर्सन कहा करते थे कि—"मुझे नरक में भेज दिया जाय तो भी मैं वहां अपने लिए स्वर्ग बनालूँगा।" वास्तविक सत्य यही नहीं बन पाता। अल्हड़ बछेड़ा चाहे जिधर कूदते है। हर आदमी अपनी भीतरी स्थिति का प्रतिबिम्ब दुनियां के दर्पण में देखता है। यदि उसके मनमें माया है तो घर, बाहर, वन, अरण्य, मंदिर, स्वर्ग सब जगह माया ही माया है, माया के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। यदि मन साफ है, पवित्रता, प्रेम, और परमार्थ की दृष्टि है तो घर का एक कोना पुनीत तपोवन से किसी भी प्रकार कम न रहेगा। राजा जनक प्रभृति अनेकों ऋषि ऐसे हुए हैं जिन्होंने गृहस्थाश्रम में रहने की साधना की है और परम पद पाया है।

वीरता भागने में नहीं, वरन् लड़ने में है। यदि गृहस्थाश्रम में अधिक कठिनाइयां है तो उनसे डरकर दूर रहना उचित नहीं। पानी में घुसे बिना तैरना कैसे सीखा जायगा? कोई व्यक्ति यह कहे कि मैं अखाड़े में जाकर व्यायाम करने की कठिनाई में नहीं पड़ना चाहता, परन्तु पहलवान बनना चाहता हूं, तो उसकी यह बात बालकों जैसी अनगढ़ होगी। काम, क्रोध, लोभ मोह के दाव घातों को देखना, उनसे परिचित होना, उन से लड़कर विजय प्राप्त करना इन्हीं सब अभ्यासों के लिए वर्णाश्रम धर्म के तत्वदर्शी आचार्य ने गृहस्थाश्रम को सर्व श्रेष्ठ, सर्वोपरि आश्रम बताया है। सम्पूर्ण देवर्षि ब्रह्मर्षि राजर्षि इसी महान् गुहा में से उत्पन्न और विकसित हुए हैं। जरा कल्पना तो कीजिए—यदि गृहस्थ धर्म—जिसे निर्बुद्धि लोग माया या बन्धन तक कह बैठते हैं—न होता तो राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, गान्धी कहां से आते? सीता, सावित्री, अनुसूया, मदालसा, दमयन्ती, पार्वती आदि सतियों का चरित्र कहां से सुन पड़ता? इतिहास के पृष्ठों पर जगमगाते हुए उज्ज्वल हीरे किस प्रकार दिखाई देते? अन्य तीनों आश्रम बच्चे हैं गृहस्थ उनका पिता है। पिता को—बन्धन कहना, नरक बताना, त्याज्य ठहराना एक प्रकार की विवेक हीनता है।

उत्तर दायित्व का भार पड़े बिना कोई व्यक्ति वास्तविक, गम्भीर, जिम्मेदार और भारी भरकम

फाँदते और दुलत्तियां उछालते हैं परन्तु जब कंधे पर भार पड़ता है तो बड़ी सावधानी से एक एक कदम रखना पड़ता है। हाथी जब गहरे पानी में धँसता है तो अपना एक पैर भली प्रकार जमा लेता है तब दूसरे को आगे रखता है। उसकी सारी सावधानी और होशियारी उस समय एक स्थान पर केन्द्रीभूत होजाती है। 'जिस चित्तवृत्ति निरोध को' एकाग्रता को पातञ्जलि ने योग बताया है वह एकाग्रता कोरी बातूनी जमाबन्दी से नहीं आती, उसके लिए एक प्रेरणा, जिम्मेदारी, चाहिए। गृहस्थाश्रम का बोझ पड़ने पर मनुष्य जिम्मेदारी की ओर कदम बढ़ाता है। अपना और अपने परिवार का बोझ पीठ पर लादकर उसे चलना पड़ता है इसलिए उच्छृंखलता को छोड़कर वह जिम्मेदारी अनुभव करता है। यह जिम्मेदारी ही आगे चलकर विवेकशीलता में परिणित हो जाती है। राजा को एक साम्राज्य के सञ्चालन की बागडोर हाथ में लेकर जैसे सँभल सँभलकर चलना पड़ता है वैसे ही एक सद्गृहस्थ को पूरी दूरदर्शिता, विचारशीलता सहनशीलता और आत्म संयम के साथ अपना हर एक कदम उठाना पड़ता है। चाबुक सवार जैसे घोड़े को अच्छी चाल चलना सिखाकर उसे हमेशा के लिए बढ़िया घोड़ा बना देता है वैसे ही गृहस्थ धर्म भी ठोकपीटकर कड़ुवेमीठे अनुभव कराकर एकमनुष्यको आत्म संयमी, दूरदर्शी गम्भीर, एवं स्थिर चित्त बना देता है। यह सब योग के लक्षण हैं। जैसे फल पक कर समयानुसार डाली से स्वयं अलग हो जाता है वैसे ही गृहस्थ की डाल से चिपका हुआ मनुष्य धीरे धीरे आत्म निग्रह और आत्म त्याग की शिक्षा पाता रहता है और अन्ततः एक प्रकार का योगी होजाता है।

लिप्सा, लालसा, तृष्णा, लोलुपता, मदान्धता, अविवेक आदि बातें त्याज्य हैं, यह बुरी बातें गृहस्थ आश्रम में भी होसकती हैं और अन्य आश्रमों में भी इसलिये कोई आश्रम त्यागने योग्य नहीं वरन् अपनी कुवासनाऐं ही त्यागने योग्य हैं।

शास्त्र क्या है ?

(महात्मा गान्धी)

वेद, उपनिषद्, स्मृतियां और रामायण तथा महाभारत सहित सारे पुराण हिन्दुओं के शास्त्र हैं। लेकिन यह ऐसी सूची नहीं है जिसमें कोई घटा बढ़ी ही न हो सकती हो। हरेकयुग और शताब्दी तक ने इसमें वृद्धि की है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि छपी हुई या हस्तलिखित मिलने वाली हरेक चीज़ शास्त्र नहीं है। उदाहरण के लिए, स्मृतियों में बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें ब्रह्मवाक्य हरगिज़ नहीं माना जा सकता। यथार्थतः, जो शास्त्र कहे जाते हैं उनका संबंध मूलतत्त्वों से ही हो सकता है और वे उसी हृदय को अपील कर सकते हैं, जिसके ज्ञान नेत्र खुल गये हों। ऐसी किसी बात को ब्रह्म-वाक्य नहीं माना जा सकता जिसकी तर्क-बुद्धि द्वारा परीक्षा न हो सके या आध्यात्मिक रूप में जिसका अनुभव न किया जा सकता हो। और फिर शास्त्रों का परिष्कृत संस्करण आपके पास हो तो भी आप को उनकी व्याख्या की जरूरत तो पड़ेगी ही। सर्वोत्तम भाष्यकार कौन माना जायगा ? निश्चय ही कोरे विद्वान् सर्वश्रेष्ठ भाष्यकार नहीं माने जा सकते। विद्वत्ता तो होनी चाहिए, लेकिन उस पर धर्म का आधार नहीं होता. उसका आधार तो सन्तों और ऋषियों के अनुभवों, उनके जीवन और उपदेशों पर होता है। जब शास्त्रों के अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण सब भाष्य बिलकुल विस्मृत हो जायँगे, ऋषियों और सन्तों के अनुभव तो तब भी स्थिर रहेंगे और आगे के अनेक युगों तक स्फूर्ति प्रदान करते रहेंगे।

उत्तम पुरुषों की सङ्गति करनी चाहिए क्योंकि अच्छी संगति में पड़कर बुरे लोग भी अच्छे होजाते हैं। पान के बीड़ों के साथ महुए या पलास के पत्ते भी बड़े लोगों के हाथों में पहुंच जाते हैं।

चालीस दिन की गायत्री साधना ।

(श्री. मंत्र योगी)

पिछले अङ्क में हम बता चुके हैं कि गायत्री मंत्र के द्वारा जीवन की प्रत्येक दशा में आश्चर्य जनक मनोवाञ्छा फल किस प्रकार प्राप्त हुए हैं और होते है। यह मंत्र अपनी आश्चर्य जनक शक्तियों के कारण ही हिन्दू धर्म जैसे वैज्ञानिक धर्म में प्रमुख स्थान प्राप्त कर सका है। गङ्गा, गीता, गौ, गायत्री, गोविन्द, यह पाँच हिन्दू धर्म के केन्द्र हैं। गुरु शिष्य की वैदिक दीक्षा गायत्री मंत्र द्वारा ही होती है।

नित्य प्रति की साधारण साधना, और सवालक्ष अनुष्ठान की विधियाँ पिछले अङ्कों में पाठक पढ़ चुके हैं। इस अङ्क में चालीस दिन की एक तीसरी साधना उपस्थित की जा रही है। शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा से इस साधना की आरम्भ करना चाहिये। साधक का निम्न नियमों का पालन करना उचित है (१) ब्रह्मचर्य से रहे (२) शय्या पर न शयन करे (३) अन्न का आहार केवल एक समय करे (४) सेंधा-नमक और कालीमिर्च के अतिरिक्त अन्य सब मसाले त्याग दे (५) लकड़ी के खड़ाऊ या चट्टी पहने, बिना बिछाये हुए जमीन पर न बैठे। इन पांच नियमों को पालन करते हुए गायत्री की उपासना करनी चाहिये।

प्रातःकाल सूर्योदय से कम से कम एक घंटा पूर्व उठकर शौच स्नान से निवृत्त होकर पूर्वाभिमुख हो कर कुशासन पर किसी स्वच्छ एकान्त स्थान में जप के लिये बैठना चाहिये। जल का भरा हुआ पात्र पास में रखा रहे। घी का दीपक तथा धूप बत्ती जलाकर दाहिनी ओर रख लेनी चाहिए। प्राणायाम तथा ध्यान उसी प्रकार करना चाहिये जैसा कि अक्टूबर के अङ्क में सवालक्ष अनुष्ठान के संबंध में बताया गया है। इसके बाद तुलसी की माला से जप आरम्भ करना चाहिए। एक सौ आठ मन्त्रों की माला अट्ठाईस बार नित्य जपनी चाहिये। इस प्रकार प्रति दिन ३०२४ मंत्र होते हैं। एक मंत्र आरम्भ में और एक अन्त में दो मंत्र नियत मालाओं के अतिरिक्त अधिक जपने चाहिये। इस प्रकार ४० दिन में सवालक्ष मंत्र पूरे हो जाते हैं।

गायत्री तंत्र' में ऐसा उल्लेख है कि ब्राह्मण को तीन प्रणव युक्त, क्षत्रिय को दो प्रणव युक्त, वैश्य का एक प्रणव युक्त मंत्र जपना चाहिए। गायत्री में सब से प्रथम 'ॐ' अक्षर है उसे ब्राह्मण तीन बार क्षत्रिय दो बार और वैश्य एक बार उच्चारण करे। तदुपरान्त 'भूर्भुवः स्वं तत्सवितु .... " आगे का मन्त्र पढ़े। इस रीति से मन्त्र की शक्ति और भी अधिक बढ़ जाती है।

लग-भग तीन साढ़े तीन घंटे में अट्ठाईस मालाऐं आसानी से जपी जा सकती हैं। यह प्रातःकाल का साधन है। इसे करने के पश्चात् अन्य कोई काम करना चाहिए। दिन में शयन करना, नीच लोगों का स्पर्श, पराये घर का अन्न, इन दिनों वर्जित है। जल अपने हाथसे नदीया कुए में से लाना चाहिये और उसे अपने लिये अलग से सुरक्षित रखना चाहिए। पीने के लिए यही जल काम में लाया जाय। तीसरे पहर गीता का कुछ स्वाध्याय करना चाहिए। संध्या समय भगवत् स्मरण, संध्या-वन्दन करना चाहिए। रात को जल्दी सोने का प्रयत्न करना उचित है जिस से प्रातःकाल जल्दी उठने में सुविधा रहे। सोते समय गायत्री माता का ध्यान करना चाहिए और जब तक नींद न आवे मन ही मन बिना होट हिलाये-मन्त्र का जप करते रहना चाहिये। दोनों एकादशियों को और अमावस्या पूर्णिमासी को केवल थोड़े फलहार के साथ उपवास करना चाहिए।

पूर्णमासी से आरंभ करके पूरा एक मास और आगे के मास में कृष्ण पक्ष की दशमी या एकादशी

को पूरे चालीस दिन होंगे जिस दिन यह अनुष्ठान समाप्त हो उस दिन गायत्री मन्त्र से कम से कम १०८ आहुतियों का हवन कराना चाहिए और यथा शक्ति सदाचारी, विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। गौओं को आटा और गुड़ मिले हुए गोले खिलाने चाहिए। साधना के दिनों में तुलसी दल को जल के साथ दिन में दो तीन बार नित्य लेते रहें।

इन चालीस दिनों में दिव्य तेज युक्त गायत्री माता के स्वप्नावस्था में किसी न किसी रूप में दर्शन होते हैं। यदि उनकी आकृति प्रसन्नता सूचक हो तो सफलताहुइ ऐसा अनुभव करना चाहिए यदि उनकी भ्रू-भंगी अप्रसन्नता सूचक, नाराजी से भरी हुई, क्रुद्ध प्रतीत हो तो साधना में कुछ त्रुटि समझनी चाहिए और बारीकी से अपने कार्यक्रम का अवलोकन करके अपने अभ्यास को अधिक सावधानी के साथ चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। नेत्र बन्द करके ध्यान करते समय, मन्त्र जपते समय मानसिक नेत्रों के आगे कुछ चमकदार गोलाकार प्रकाश पुंज से दृष्टिगोचर हों तो उन्हें जप द्वारा प्राप्त हुई आत्म शक्ति का प्रतीक समझना चाहिए।

चालीस दिन की यह साधना अपने को दिव्य शक्ति से सम्पन्न करने के लिए है। साधना के दिनों में मनुष्य कृश होता है उसका वजन घट जाता है परन्तु दो बातें बढ़ जाती हैं एक तो शरीर की त्वचा पर पहले की अपेक्षा कुछकुछ चमकदार तेज दिखाई पड़ने लगता है, दूसरे एक विशेष प्रकार की गंध आने लगती है। जिसमें यह दोनों लक्षण प्रकट होने लगें समझना चाहिए कि उस साधक ने गायत्री के द्वारा अपने अन्दर दिव्य शक्ति का सञ्चय किया है। इस शक्ति को वह अपने और दूसरों के अनिष्टों को दूर करने एवं कई प्रकार के लाभ उठाने में खर्च कर सकता है। अच्छा तो यही है कि इस शक्ति को अपने अन्दर छिपा कर रखा जाय और सांसारिक सुखों की अपेक्षा आध्यात्मिक पारलौकिक आनन्द प्राप्त किया जाय।

———

दही-भूलोक का अमृत है।

दही के नित्य प्रयोग करने से मनुष्य-जीवन कितना बढ़ सकता है इस बात का पता इस्तम्बुल से डाक द्वारा आये हुए एक समाचार से लगता है। यह समाचार गुजराती भाषा के "जन्म-भूमि" नामक पत्र में छपा है। उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

'तुर्की (टर्की) में १५० वर्ष से ऊपर की उमर वाले आदमी जीवित हैं। ये लोग तुर्की के पूर्वी विभाग में रहते हैं और उनकी मुख्य खुराक दही है।

इन दीर्घ जीवी मनुष्यों में से सब से वृद्ध सेनापती अल्ली हैं। वे पूर्व एन्टोलिया के अल-अजीक नगर में रहते हैं। वे दुनियां के सम्भवतः सब से वयोवृद्ध व्यक्ति मालूम होते हैं। इनकी सगी बहिन १३७ वर्ष की है जो तुर्की की सब से वयोवृद्ध स्त्री है।

सेनापति अल्ली ज्यादा बोल नहीं सकते। उनकी कर्णेन्द्रिय भी मन्द हो गई है तो भी इनकी साधारण तन्दुरुस्ती अच्छी है। रात्रि को वे केवल चार घण्टे सोते हैं। ज्यादा समय उनका चिलम पीने में खर्च होताहै। हाल में उनके नये दांत निकले हैं

१८१६ की साल की ग्रीक लोगों से जो लड़ाई हुई थी उसमें अल्ली सा, सेनापति बनाकर भेजे गये थे। उसके बाद वे क्रीमियन युद्ध में भी लड़े थे। इसके बाद अपनी सौ वर्ष की आयु पूरी की १८७६ में। सर्विया में जब पहिला बलवा हुआ था उसे शांत कराने में सेनापति अल्ली ने भाग लिया था।

आये हुए समाचार से मालूम हुआ है कि तुर्की में ६४२१ मनुष्यों ने अपनी जिन्दगी के १०० वर्ष पूरे कर लिये हैं और आगे बढ़ रहे हैं। इन में से ३९८५ स्त्रियां हैं और २४३६ पुरुष हैं।"

दही ऐसा ही बलवर्धक पदार्थ है उसे खाने से दीर्घ जीवन प्राप्त होता है।

———

इस्लाम और गौवध।

(लेखक – श्री.हरिश्चन्द्र मीतल, कुँजरोद)

हिन्दू धर्म में तो गौ वध वर्जित है ही, किन्तु इस्लाम धर्म में भी गौ के लिए वही स्थान सुरक्षित है जो हिन्दू धर्म में। भले ही मुसलमान उसका पालन न करें। प्रस्तुत लेख में इसी बात को सिद्ध करने की चेष्टा की गई है।

(१) बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ को एक आज्ञा पत्र लिखा था (जो अभी भी भूपाल राज्य के राजकीय पुस्तकालय में मौजूद है) जिसमें राजनीति की अन्य बातों का उल्लेख करते हुए गौ वध निषेध की ओर भी अँगुलिनिर्देश किया था, उसका आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है, "विशेष कर गौहत्या से परहेज करो क्योंकि ऐसा करने से तुम भारतीयों के हृदयों पर विजय पा सकोगे"

(२) सुप्रसिद्ध इतिहासकार मि० हंटर का कथन है कि मुगल राज्य में लगभग दो सौ वर्षों तक भारत भर में एक भी गौ नहीं मारी गई।

(३) फ्रांसीसी यात्री डा० बेटीनयर और डा० बरने (शाही हकीम) ने क्रमशः जहांगीर और शाहजहाँ के शासन प्रबन्ध का वर्णन करते हुए लिखा है—"राज्य में पशुओं की कमी हो जाने से गौ हत्या बिलकुल बन्द कर दी गई थी।"

(४) विंसेट स्मिथ ने अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में लिखा है—"अकबर ने अपने साम्राज्य में गौ वध करने वालों के लिये प्राणदण्ड की व्यवस्था की थी।

(५) सुलतान नासिरुद्दीन खुसरो के राज्य में गौ वध बन्द था।

(६) आइने अकबरी में लिखा है—"इस्लाम धर्म में कठोरता कदापि समीचीन नहीं है। इसलिये समस्त आज्ञाऐं सरल रखी गई हैं। गौ वध कठोरता की सीमा होने के कारण इस्लाम से विरुद्ध है।

(७) मैसूर पतन होने पर मैसूर नरेश की लाखों गौएं हैदरअली के हाथ लगीं। हैदरअली ने उन गायों से अपनी गायों की संख्या बढाली। राज्य के विभिन्न स्थानों में साठ हजार बलवान सांड थे। टीपू सुल्तान ने इस विभाग की ओर भी उन्नति की। उसने गौ रक्षा के लिए कई आज्ञापत्र निकाले और उनके आहार विहार का उचित प्रबन्ध किया। वर्षान्त में गणना के लिए स्वयं उपस्थित रहता था।

(८) अकबर दी ग्रेट मुगल में लिखा है कि — "मुसलिम राज्य के प्रारंभिक काल से लेकर सुलतान फीरोजशाह तुगलक के समय तक कसाइयों पर १२ जीतल प्रति गांव कर लिया जाता था।

(९) आइनए अकबरी में लिखा है, सम्राट अकबर ने केवल गौवध ही बन्द न किया था बल्कि अपने एवम् अपने पुत्रों के जन्म दिवस और अपने राजगद्दी पर बैठने के दिन पशु वध को मनाही भी करवा दी थी। उस समय घी और दूध क्रमशः एक आने और एक पैसे सेर बिकता था।

(१०) मौ० ख्वाजाहसन निजामी ने लिखा है—गौहत्या इस्लाम धर्म का स्तम्भ नहीं है...... मेरा अपील है कि हमें गौवध सर्वथा त्याग देना चाहिए ऐसा करने से हमारे धर्म में कोई बाधा नहीं आ सकती।

(११) अफगानिस्तान के राजा अमीर हबीबुल्लाखाँ सन १९११ में भारत आये थे आपने कहा था—हमें गौवध नहीं करना चाहिये। कोई मुसलमान कहीं भी ऐसा कार्य न करे जिससे हिन्दू जनता को दुःख पहुँचे।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है मुसलमानी शासन काल में गौरक्षा का कितना महत्व था। यह तो हुए मुसलिम शासकों के विचार। अब इस्लाम तथा ईसाई धर्मकी धार्मिक पुस्तकोंके विचार भी देख लीजिये।

(१) गौओं को मारना इस्लाम धर्म के आचरणों में शामिल नहीं है —फतव ए-इ-हुमायूँनी

(२) जो बैल काटता है वह उस मनुष्य की तरह है जो मनुष्य मारता है —(जबूर बाब ४६,५०)

३) मैं तेरे घर का बैल न लूँगा और न तेरे बाड़े का बकरा। क्योंकि समस्त प्राणी मेरे हैं। क्या मैं बैलों का मांस खाता हूं या बकरों का रक्त पीता हूं? —(तौरेत-बाब १८, १६)

(४) हरगिज नहीं पहुँचते अल्लाह के पास गोश्त और खून। हाँ पहुँचती है अल्लाह के पास तुम्हारी परहेजगारी। —कुरान (रूरए हज)

(५) हदीस में लिखा है—पेड़ काटने वाला, मनुष्य बेचने वाला, गौवध करने वाला और पर स्त्री गमन करने वाला, ये अपने बुरे आचरणों के कारण नरकगामी होंगे।

(६) मैं कुरबानी नहीं चाहता बल्कि रहम चाहता हूं तू मांस न खा शराब न पी और न वह काम कर जिससे तेरा भाई तकलीफ उठावे।-इंजील

(७) मांस से परहेज करो। आदत पड़ने पर इसका छूटना शराब की तरह कठिन है।

—हजरत उमर।

इन सब बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गौ जैसी सर्वोपकारी विधि का विनाश करना न तो धर्म सम्मत है न विवेक सम्मत। इसलिये गौ की रक्षा करना ही सब लोगों के लिए उचित है।

सात्विक सहायताऐं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताऐं प्राप्त हुई। अखण्ड-ज्योति इन महानुभावों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

१०) श्री मानसिंहजी टाक जोधपुर।
५) पं० शंभुप्रसादजी मिश्र, हृदयनगर।
१) श्री. ठाकुरप्रसाद सिंहजी नोतनवा।
१) श्री. रामकृष्णजी वर्मा लखनऊ।
१) श्री. चुन्नीलालजी वर्मा लखनऊ।
१) श्री. देवराजजी सातों जोगा।
१) श्री. गुलफामसिंहजी काशीपुर।

धार्मिकता और ईश्वर भक्ति।

(श्री कान्तिकुमारजी आर्य, हैदराबाद)

पानी पानी चिल्लाने से किसी की प्यास नहीं बुझती। जिसे अपनी पिपासा बुझानी है उसे जल ग्रहण करके मुख द्वारा पेट तक पहुंचाना होगा। धर्म धर्म चिल्लाने से, या ईश्वर ईश्वर रटने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जो धर्म और ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें कल्पना और जल्पना की परिधि से आगे बढ़कर कुछ काम करना होगा। सिद्धान्तों और तत्वों को जीवनमें प्रत्यक्ष रूपसे कार्यान्वित करना होगा महात्मा कबीर का वचन है कि:-

सहज राम को नाम है. कठिन राम को काम।
करत राम को काम जब, परत राम से काम॥

वाक् शूरों की शूरता हमें उनके भाषणों और लेखों में बहुत से सुनते और पढ़ते चले आ रहे हैं, किन्तु वह प्रयास प्रायः निरर्थक ही रहा है। विचार और आचरणों के समन्वय बिना कोई ठोस वस्तु पैदा नहीं होती। धर्मात्मा वह है जो अपने जीवन को धार्मिक सिद्धान्तों से भरपूर बनाने के लिये प्रयत्नशील रहता है। पवित्रता, उदारता, सेवा, सहानुभूति, ईमानदारी, समानता और न्याय शीलता यह धार्मिकता के प्रधान लक्षण हैं। जिसमें यह गुण नहीं वह भले ही कंठीमाला, तिलक, जनेऊ, आदि पहने हो, कैसा ही वेष बनाये हो, कैसे ही मजहवी कर्मकाण्ड करता हो सच्चा धार्मिक नहीं हो सकता।

इसी प्रकार ईश्वर भक्ति घंटा घड़ियाल तक सीमित नहीं है। प्राणिमात्र में समाये हुए परमात्मा को जो पहचानता है, प्रेम करता है और जनता जनार्दन की सेवा के लिए कटिबद्ध रहता है सच्चा ईश्वर भक्त वही कहा जायगा अब समय आ गया है कि हम मूढ़ विश्वासों से छुटकारा पाकर सच्ची धार्मिकता और ईश्वर भक्ति को पहिचानें और उसी पर आरूढ़ होने का प्रयत्न करें।

दीपक का उत्तरादायित्व ।

(राजकुमारी रत्नेशकुमारी मैनपुरी)

सारे दिन के कठोर परिश्रम के पश्चात् अस्ताचल की ओर अनिवार्य गति से विश्राम हेतु जाते हुए भगवान दिनपति ने चिन्तित भाव से पूछा-मेरा कर्तव्य भार कौन ग्रहण करेगा ?

झिलमिलाती हुई तारिकाओं ने सङ्कोच पूर्वक कहा--हम प्रस्तुत हैं देव ! पर दिनकर ने पूर्ववत् चिन्तित भाव से ही कहा--पर नन्ही तारिकाओ ! तुम्हारा क्षीण आलोक कुटियाओं और राजमहलों तक तो प्रवेश भी नहीं कर सकेगा ? फिर निस्तब्धता छागई मैंनेसाहसपूर्वक कहा इसहेतु मुझेआदेशहो देव!

मेरा मस्तक नत था हृदय धड़क रहा था और रह २ कर ये प्रश्न उठ रहा था-क्या यह मेरा केवल दुस्साहस मात्र है ? पर उन्होंने प्रशंसा पूर्वक मेरी ओर देखते हुए मेरी क्षुद्रशक्ति को जानते हुए भी कहा--तथास्तु ।

नन्हे दीप ! नन्ही तारिकाओ ! तुम्हारे सद्-साहस पर बधाई! अपना२ कर्तव्य भार अब सम्हालो सर्व शक्तिमान जगत् नियन्ता तुम्हारे इस सदुद्योग को पूर्ण करने की शक्ति तुम्हें प्रदान करे । उत्साह-वर्धक इन शब्दों को प्रफुल्लता पूर्वक कह कर वे अस्ताचल में विलीन हो गये । तभी से मैं प्रतिक्षण अपना कर्तव्य पालन करता आ रहा हूँ ।

मेरा जीवनाधार और प्रकाशोत्पादक स्नेह धीरे२ घट रहा है । वायु के तीव्र झोकों से रह २ कर मेरी क्षीण लौ कांप उठती है । रह २ कर यही आशङ्का मेरे हृदय के सन्तोष और दृढ़ता में विक्षेप उत्पन्न कर रही है कि क्या मैं अपना कर्तव्य पूर्ण न कर पाऊँगा ।

मुझे मृत्यु का डर नहीं है । वह तो कठोर परि-श्रम के पश्चात् नवशक्ति प्राप्ति के हेतु अनन्त जीवन में एक क्षणिक पर अनिवार्य विश्राम मात्र है। पर मेरे सारे हृदय की ये ही एक मात्र अभिलाषा है कि मैंने जो उत्तरादायित्व उठाया है वह अपूर्ण हो न रह जाये भगवान् दिनेश ने मेरी सद्भावनाओं पर आपकी ही न्यायशीलता के कारण विश्वास कर के ये गुरुतर भार दिया है । नहीं तो मेरी शक्ति ही क्या ? मेरी अनन्य आकांक्षा की पूर्ति आप के ही हाथ है करुणामय !

भगवान् बुद्ध के उपदेश !

सुचरित्र बन और धर्म में चल, अधर्ममें मत चल । धर्मात्मा इस लोक और परलोक दोनों में सुख पाता है । —लोक बग्गो ।

सब पापों को छोड़ो । अच्छे गुणों का सम्पादन करो । अच्छे विचारों को धारण करो । यही बुद्धों की शिक्षा है । —बुद्ध बग्गो ।

हम सुख से जीवें, बैरियों से बैर न करें । जो हम से बैर करते हैं उन मनुष्यों से बैर रहित होकर रहें । —सुख बग्गो ।

हम अपरिग्रही होते हुए सुख से जीवें । जैसे देवता लोग अपने ही प्रकाश से आनंदित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी प्रीति को ही अपना लक्ष्य समझें । —सुख बग्गो ।

आरोग्य परम लाभ है, संतोष परम धन है । विश्वासी पुरुष ही परम बन्धु है । निर्वाण ही परम सुख है । —सुख बग्गो ।

धीर, बुद्धिमान, शिक्षित, सदाचारी और श्रेष्ठ पुरुषों का सङ्ग करो । जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रों के मार्ग पर चलता है इसी प्रकार सत् पुरुष और ज्ञानी का अनुसरण करो । —सुख बग्गो ।

अपने को जीतने वाला समस्त प्रजा को जीतने वाले से अच्छा है । जो पुरुष आत्मजित और नियमित आचार का है उसकी विजय को कोई परा-जित नहीं कर सकता । न देव, न गंधर्व, न मार और न ब्रह्मा । —सहस्स बग्गो ।

अवतार-रहस्य ।

(श्री. धर्मपालसिंह रुड़की)

शास्त्रों में यह बतलाया गया है कि जीव कर्म का फल भोगने में परतंत्र है फल में उसके वश की कोई बात नहीं है। फल का अधिकार एक गुप्त शक्ति के हाथ में है, जिसको हम ईश्वर परमात्मा कहते हैं। इस गुप्त रहस्य को ब्रह्म विद्या के ज्ञाताओं ने इस प्रकार खोला है, कि मनुष्य जो कुछ इच्छा या कर्म करता है उसका फोटो वा प्रभाव परमात्मा के सर्व व्यापी माया रूप नभ मण्डल पर पड़ता है। वह फोटो वा प्रभाव हमारी इन चमड़े की आंखों से दिखाई नहीं देता इसलिए उसे गुप्त चित्र, या चित्र-गुप्त भी कहते हैं। इन्हीं गुप्त चित्रों के अनुसार अकेले प्राणी की इच्छाओं के योगिक परिणाम से व्यष्टि प्रारब्ध, और सब प्राणियों की इच्छाओं के योगिक परिणाम से समष्टि प्रारब्ध बनते हैं।

जैसे ध्वनि-प्रति ध्वनि में, बिम्ब-प्रति बिम्ब में बदलता है। वैसे ही इच्छाएँ प्रति इच्छाओं में बदलती हैं। जब हम किसी कुएँ (गुम्बद) में कोई आवाज करते हैं तो वह उसी रूप में वापस आती है। गाली से गाली प्रशंसा से प्रशंसा, और भले शब्दों से भले शब्द वापस सुनाई देते हैं। ठीक इसी प्रकार भू मण्डल पर जैसी इच्छाऐं या कर्म मनुष्य करता है उसकी प्रति इच्छाओं और प्रति क्रियाओं का चित्र नभ मण्डल पर बनकर फल लाता है इसलिए जब हम दूसरों का अशुभ चिन्तन अथवा कर्म द्वारा बुरा चाहते हैं तो उसका वैसा ही चित्र नभ मण्डल पर तैयार हो जाता है जो समय पाकर हमारे वैरी शत्रु, के रूप में प्रगट होकर हमें हानि पहुँचा जाता है। इसी प्रकार जब हम किसी का मन-वाणी-कर्म द्वारा हित चाहते और कहते हैं तो उस प्रकार की प्रति इच्छाएँ और क्रियाएँ इसी गुप्त चित्र द्वारा तैयार होकर हमारे मित्रों, शुभ-चिन्तकों--सहायकों के रूप में प्रगट होकर हमारा भला कर जाते हैं। शास्त्रों में इसीलिये यह उपदेश दिया गया है--कि सदैव भला सोचो भला करो, धर्म को ग्रहण करो अधर्म को त्यागो। क्योंकि शुभ-चिन्तन कर्त्ता की उन्नति और अशुभ चिन्तन उसकी अधोगति का कारण होते हैं।

प्राणियों की सामूहिक इच्छाओं का परिणाम समष्टि प्रारब्ध होता है यह बतलाया जा चुका है। मनुष्यों की बहुतसी इच्छाएँ एक समान भी होती और बहुत भिन्न, यह समानता भिन्नता देश और काल के अनुसार होती हैं जब किसी देश के निवासी भौतिक सम्पत्ति--सोना-चांदी-धन-धान्य-वैभव-ऐश्वर्य से सम्पन्न होते हैं तो बहुधा उनके अन्दर डाह, ईर्षा अभिमान, दूसरों को नीचे गिराने और स्वयं ऊँचा चढ़ने की इच्छाएँ तथा भिन्न २ प्रकार से विषयों को भोगने की कामनाएँ अधिकतर समान रूप से उत्पन्न होती हैं इन मलिन कामनाओं के कारण वे लोग नास्तिक--और ईश्वर विरोधी बन जाते हैं, फल स्वरूप इन मलिन इच्छाओं का सामूहिक चित्र नभ-मण्डल में तैयार होकर समष्टि प्रारब्ध से एक मलिन अहङ्कार युक्त व्यक्ति के रूप में प्रगट होता है जिस को दैत्य दानव या राक्षस कहते हैं।

जब किसी देश में काल चक्र के प्रभाव से दरिद्रता, निर्बलता, दीनता, दासता, जुल्म, दुःख, महामारी, अकाल, उपद्रव, अपना डेरा डाल देते हैं तब वहां के पीड़ित असहाय लोगों में, दया, करुणा भक्ति, परस्पर प्रेम, सहानुभूति अहिंसा अनाभिमान जैसी शुद्ध भावनाएँ समान रूप से अधिकतर उत्पन्न होती हैं जिसके फल स्वरूप देश में ईश्वराधन, भक्ति, सदाचार-धर्म, परमानन्द भोगने की इच्छाएँ, जिज्ञासाएँ, और उनके अनुसार कर्म भी होने लग जाते हैं जिससे देश में आस्तिकता और धर्म का प्रचार बढ़ाने लगता है और सत् धर्म की स्थापना के लिए सामूहिक शुभ इच्छाओं के परिणाम स्वरूप जो चित्र नभमण्डल में तैयार होता

पूर्वजों का अनुकरण ।

(श्री. रमेश बर्मा, खागा)

अपने पूर्वजों की महानता का आदर करना, यह एक मानवोचित कर्तव्य है। हम भारतीय लोग इस कर्तव्य का महत्व भली प्रकार समझते हैं और अपने पूर्वजों की बहुत सी बातों का अनुकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं। परन्तु देखते हैं कि वह अनुकरण अधिकांश में लाभ के स्थान पर हानिकारक परिणामों को उत्पन्न करता है।

विचार करने पर मालूम होता है कि यह हमारी अपनी भूल है। देश काल के अनुसार जो रीति रिवाज उन्हें उस समय अपनाने पड़े थे, आज वैसा समय और वातावरण न होते हुए भी उन प्रथा, परिपाटी और परम्पराओं का अन्धानुकरण करने में सन्तोष किया जाता है। यह हमारी भूल है। अनुकरण करने योग्य बात यह है कि हमारे पूर्वजों ने शिल्प, व्यापार, स्वास्थ्य, शिक्षा, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, गणित आदि अनेकों प्रकार के तथ्यों का अन्वेषण किया, उन्हें मौलिक दृष्टि से विचार और तत्संबंधी ऐसी ऐसी जानकारियां खोज निकालीं जो उनके उस समय तक अज्ञात थीं।

आज जैसे योरोप और अमेरिका समुन्नत हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में भारत वर्ष सब दृष्टियों से बढ़ा चढ़ा था। कारण यह है कि जिन लोगों के मस्तिष्क वास्तविकता को खोज निकालने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं वे ही ऊँचे उठते और आगे बढ़ते हैं। पाश्चात्य देशों में नित नूतन आविष्कार होरहे हैं, यह आविष्कार और अन्वेषण भौतिक, शारीरिक और मानसिक हर एक दिशा में होरहे हैं, यह प्रगति उन्हें ऊँचा उठाती और आगे बढ़ाती है। यदि उन्होंने ऐसा सोचा होता कि हमारे पूर्वज जहां तक सोच चुके हैं, या जो कुछ बना चुके हैं बस वही पर्याप्त है, उससे आगे की बात करना या सुधार करने की कहना अनुचित है तो किसी दिशा में कोई प्रगति न हुई होती, एक भी आविष्कार दृष्टि गोचर न हुआ होता।

उन्नत वे लोग होते हैं जिनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है। वैज्ञानिक इस बात की परवा नहीं करता कि अब तक इस संबंध में क्या कहा जाता रहा है। न्यूटन से पहले कोई यह नहीं कहता था कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। "कोई नहीं कहता" क्या इतनी सी बात ने न्यूटन की दृष्टि को संकुचित किया? नहीं, कदापि नहीं। उसने अपना प्रयास जारी रखा और अपनी खोज लोगों के सामने उपस्थित करदी। लोगों ने उससे कहा कि—पुरानी किसी किताब में यह नहीं लिखा है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। तो भी न्यूटन रुका नहीं, उसने कहा एक वैज्ञानिक के लिए यह सोचना आवश्यक नहीं कि पूर्व समय में यह बात इसी रूप में मानी जाती थी या किसी और रूप में?

भारतवर्ष वैज्ञानिकों का देश है। हमारे तत्वदर्शी ऋषि महर्षि बड़े भारी अन्वेषक और शोधक हुए हैं। उस समय में जितने साधन उपलब्ध थे उन्हें देखते हुए उन्होंने अपने जमाने में आश्चर्य जनक शोधें की थी। यह शोधें इसलिए आगे बढ़ीं, जारी रहीं और सफल हुईं कि उनका दृष्टिकोण विशुद्ध वैज्ञानिक था। जो पहले कहा जा चुका है वही ठीक है, यह विचार आते ही वैज्ञानिकता

है जो समष्टि प्रारब्ध से व्यक्त होकर संसार में प्रकट होता है अवतार कहलाता है। अर्थात् एक प्रभावशाली व्यक्ति जो शुद्ध अहङ्कार का परिणाम होने से साक्षात् ईश्वर की ही होती है उसका प्रादुर्भाव होना, अवतार कहलाता है। इन महापुरुषों का जन्म किन्हीं पूर्व कर्मों के बन्धन में आकर नहीं होता किन्तु शुद्ध समष्टि प्रारब्ध के अनुसार प्रकृति के कोष से सब शक्तियों संग्रह करके उद्देश्य पूरा करने के लिए स्वेच्छा से होता है।

समाप्त होजाती है और हठधर्मी आरम्भ होजाती है। हमारे पूर्वजों की गुण गाथा पृथ्वी भर में प्रसिद्ध है। यह गौरव गारिमा उन्होंने हठधर्मी से दूर रहकर और वैज्ञानिकता का आश्रय लेकर हीं प्राप्ति की थी।

आज हम लोग अपने पूर्वजों का अनुकरण करते हैं। किस बात का?—उनके समय की किन्हीं रीति रिवाजों या उन प्रथा परम्पराओं का—जो अब बिलकुल बे काम हो गई हैं, सड़ गई हैं. यह हठधर्मी नहीं तो और क्या है? पूजनीय पूर्वजों की स्वर्गस्थ आत्माऐं यदि हम लोगों को देखती होंगी तो हमारी मूर्खता की बड़ी भर्त्सना करती होंगी। हमारे पूर्वज तो "पुत्रादिच्छेत्पराजयम्" पुत्र से पराजय की इच्छा करते थे, अपने से अधिक आगे बढ़ा हुआ संतान को देखना चाहते थे, क्योंकि उन्होंने स्वयं भी अपने पितरों से आगे बढ़ने का प्रयत्न किया था।

हमें अपने पूर्वजों की वैज्ञानिकता का शोधक दृष्टि का अनुकरण करना चाहिए, आज की समस्याओं पर आज के ढङ्ग से स्वतंत्र मस्तिष्क से विचार करना चाहिए तभी हम सच्चे सपूत कहला सकते है।

शोक समाचार!

गत सप्ताह 'अखण्ड—ज्योति' सम्पादक श्री आचार्य जी की धर्मपत्नी का स्वर्गवास होगया। कराल काल से न जाने इस दम्पति का स्वर्गीय सौभाग्य क्यों सहन न हुआ। श्रीमती जी के तत्वा-वधान में महिलाओं सम्बन्धी एक उच्च कोटि के मासिक पत्र निकलने की तैयारी होरही थी कि अकस्मात यह वज्रपात होगया। भगवान की इच्छा प्रबल है।

—चन्द्रकिशोर तिवारी।

सुखी बनने का सच्चा साधन।

(कुमारी ईश्वरी देवी वर्मा, हैदराबाद)

प्राणी मात्र सुख की प्राप्ति और दुःखका अभाव चाहता है जो कर्म प्राणी करता है उसके फल को प्राप्त करता है। जो मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करते हैं उन्हें सुख प्राप्त होता और जो मनुष्य दुष्ट कर्म करते हैं उन्हें दुख प्राप्त होताहै। श्रेष्ठ कर्म करना मानव जाति को धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष प्राप्त कराने का साधन है। जो सुखी हैं, जिनका आत्मा सन्तोषी है उन्हें सुख फल प्राप्त हो रहा है यह सर्व साधारण भी समझते हैं, इतना समझते हुए भी मनुष्य श्रेष्ठ कर्म न करते हुए सुख रूप फल पाना चाहते हैं, तो सुख कहां प्राप्त होगा?

इसलिये मानवों का कर्तव्य सुकर्म करना और सुख फल पाना है। सारे संसार के मनुष्य सुख चाहते हैं दुःख से भयभीत होते हैं। यदि इस संसार में मानव जाति दुःख से तरना चाहती है तो उसको तरने की नौका, सुआचार, पवित्र विचार, और श्रेष्ठ कर्म ही हैं। वेदों, धर्म शास्त्रों, की आज्ञा पालना मनुष्य का सुख साधन सञ्चित करने का महान साधन है। मनुष्य सुख संतोष चाहते हैं तो प्रथम शुभ कर्म अपना कर, उसका फल प्राप्त करें। जो मनुष्य सुख तो चाहता है पर सुखदायक कर्म नहीं करता उस पर परम पिता परमात्मा भी कृपा नहीं करता। जो पुरुषार्थी हैं, सिंह के समान पराक्रम युक्त, पावक के समान पवित्र हैं, उन पर कृपाकारक परमात्मा का कृपा कारक हस्त सदा बना रहता है। और वे ही भीतरी तथा बाहरी दृष्टि से सदा सुखी रहते हैं।

मैं एक ऐसा मनुष्य हूँ जिसे काम करते रहने में ही सुख मिलता है। मैं तर्क नहीं जानता, काम करना पसन्द करता हूं। —बेकन

बिच्छू के काटे का इलाज।

[लेखक—श्री० गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र' आगर]

बिच्छू के काटने पर इलाज में जल्दी करनी चाहिए। इसके विष की यही पहिचान है कि काटे जाने के बाद शरीर में झनझनाहट होती है, स्थान भारी होता है। यदि भयंकर बिच्छू ने काटा तो शरीर में जलन होती है, पसीना छूटने लगता है, पीडा के मारे अङ्ग फटने लगता है। नाखूनों का रंग पीला, हरा, या नीला हो जाता है। नींद आने लगती है। मनुष्य प्रलाप करता है। नाक या मुंह से काले रंग का खून गिरने लगता है शरीर पर फफोले पड़ जाते हैं। प्यास खूब लगती है। पेशाब रुक जाता है। बिच्छू द्वारा काटे गये व्यक्ति की दशा देख कर ही उसका उपचार करना चाहिए। यदि बिच्छू देख लिया हो तो उसके अनुसार ही चिकित्सा करना जरूरी है। "काटने वाले बिच्छू को तत्काल मार डाला जाय तो विष ज्यादा नहीं चढ़ता" ऐसा लोगों का अनुमान है किन्तु इसकी सत्यता में सन्देह अवश्य है।

जब बिच्छू काटे तो फौरन् उस काटे हुए स्थान से चार छः अंगुल ऊपर एक रस्सी से कस कर बन्ध लगादो और उससे ऊपर एक बन्ध उतने ही फासले पर और लगादो। बन्ध खूब कसकर लगाया जाय ताकि शरीर में बहने वाले खून का आवागमन रुक जाय। यदि ऐसे अङ्ग में काटा हो जहाँ बन्ध नहीं लगाया जा सकता हो तो किसी पैने औजार से जैसे उस्तरा, चाकू या सुई से उस स्थान को फौरन इतना कुरेद डालो कि खून बहने लगे। इसके बाद "कारबोलिक एसिड" या "ऐसेटिक एसिड" में सुई का एक फाया भिगो कर रखदो अथवा कुरेदने के बाद "परमेंगनेट आफ पोटास" को बारीक पीस कर उस पर रखकर पट्टी बाँध दो। लगाने की दवा के साथ हो कोई सी दवा खिलाने को भी देना चाहिए। हम बिच्छू का जहर नष्ट करने [illegible] हैं।

(१) गौ के घी में सेंधा नमक मिलाकर गरम करलो और दंशस्थान पर लगाओ।

(२) जमाल गोटे को घिसकर काटे हुए स्थान पर लगाओ।

(३) कद्दू का डण्ठल पानी में घिसकर काटे हुए स्थान पर लगादो।

(४) "लाइकर अमोनिया" को काटी हुई जगह पर लगादो।

(५) बिच्छू काटे की झनझनाहट को हाथों से दबा दबाकर दंश की ओर ले जाओ। बाद में गीली राख काटी हुई जगह पर बांध दो।

(६) मूली और नमक पीसकर दंश स्थान पर बांध दो।

(७) सांभरी नमक एक एक आना भर मरीज को बार बार खिलाओ।

(८) प्याज का रस काटे हुए स्थान पर निचोड़ो।

(९) मोरपंख को चिलम में रखकर पिलाने से आराम होगा।

(१०) काटे हुए स्थान पर चूहे की मेंगनी पानी के साथ पीस कर लेप करो।

(११) नीबू के रस में बकरी की मेंगनी पीस कर लेप करदो।

(१२) सूरजमुखी का पत्ता मसल कर फौरन सुंघादो।

(१३) पलास के बीज अकौए के दूध में पीस कर लगादो।

(१४) बेर की पत्तियां पीस कर दंश स्थान पर लुगदी बांधदो।

(१५) अपमार्ग की जड़ दंश-स्थान पर लगादो

(१६) प्याज और गुड़ खिलाओ।

(१७) चूना और सेंधा नमक दंश-स्थान

(१८) घी में सेंधा नमक मिलाकर लगादो।

(१९) सुपारी घिसकर लगाओ।

आशा है. इन दवाओं से लोग लाभ उठावेंगे।

विचार के साथ कार्य भी।

[श्री पं० ओंकारनाथजी तिवारी बेसड़ी फतहपुर]

केवल मन से विचार करने मात्र से कार्य पूरा नहीं हो सकता। संसार के महान से महान कर्म विचारकों द्वारा कार्य क्षेत्र में आकर पूरे हुए हैं।

जिसकी कार्य करने की शक्ति को थोथे विचारों ने मार दिया है उससे कुछ काम तो होता नहीं सिर्फ सोचता ही रहता है। दूसरी ओर कार्य-कर्ता मनुष्य जहां भी कोई कार्य करने योग्य बात देखता है त्योंही कर बैठता है। नेपोलियन ने एक समय कहा था—'मेरा लोहे की तरह बलवान हाथ कलाई के सिरे में नहीं हैं वरन् मस्तिष्क (Brain) से जुड़ा हुआ है। यथार्थ में पूछो तो मेरा हाथ और विचार मिले हुए हैं। हाथ और कलाई में सम्बन्ध कुछ नहीं है"। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नेपोलियन बोनापार्ट सरीखे उत्तम कार्य कर्ताओं को संसार ने अधिक उत्पन्न नहीं किया है जिनका लक्ष सदा ऊँचो २ बातों पर होता था और जो उनके करने के लिये बिलकुल सीधा निधड़क होकर जाता था। इसी गुण का होना विद्वान् पैथे गोरस ने 'मानसिक बल के होने' का चिन्ह कहा है।

कितनाही उत्तम विचार क्यों न हो जब तक वह कार्य के साथ नहीं मिलाया जावेगा तब तक निरर्थक ही है। कोरे विचार से ही कुछ नहीं होता— नरक में पड़े हुए व्यक्तियों के विचार भी स्वर्ग प्राप्त करने के ही होते हैं नरक वाले भी यही कहते हैं कि हम यहां आही गये हैं यह भाग्य का फेर है परन्तु नियत हमारी स्वर्ग जाने की थी। अतः ऐसी अच्छी नियत तो नरक वालों की भी हो सकती है। सफलता की प्राप्ति कर्तव्य करने से होती है केवल विचार मात्र से नहीं।

ब्रह्मचर्य क्या है?

[श्री० गोपाल प्रसाद 'वंशी' बेतिया]

ब्रह्मचर्य का अर्थ है—शक्तियों का संग्रह करना, उन्हें बिखरने न देना—उन्हें अपनी उन्नति में लगाना। इसका अर्थ शक्ति है, क्रियाशीलता है, तत्परता है, उत्साह है, ओजस्विता है, सहनशीलता है। इनका अर्थ मोटापन नहीं, पहलवानी नहीं है।

ब्रह्मचर्य्य शारीरिक स्वास्थ्य देता है, सहनशक्ति, उत्साह तथा साहस देता है; ब्रह्मचर्य्य से मानसिक शक्तियों का विकास होता है, आत्मा उन्नति के मार्ग पर चलने लगता है।

ब्रह्मचर्य्य का अर्थ है सभी इन्द्रियों और विकारों पर सम्पूर्ण अधिकार। इसकी विस्तृत व्याख्या- 'समस्त इन्द्रियों का संयम' है।

ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से भी मुझमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह एक कागज को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए मुझे ब्रह्मचर्य्य के कारण हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ी काम का नहीं। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर का स्पर्श करके कर सकते हैं। उसी का अनुभव जब हम किसी सुन्दरी से सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है।

ब्रह्मचर्य का पूरा वास्तविक अर्थ है, ब्रह्म की खोज। ब्रह्म सब में व्याप्त है। अतएव उसकी खोज अन्तर्ध्यान और उससे उत्पन्न होने वाले अन्तर्ज्ञान से होती है। यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियों के पूर्ण संयम के बिना नहीं हो सकता। इसलिए सभी इन्द्रियों का तन मन और वचन से सब समय और सब क्षेत्रों में संयम करने का ब्रह्मचर्य कहते हैं।

जिसने स्वाद नहीं जीता, वह विषयों को नहीं जीत सकता। इसलिए ब्रह्मचारी को स्वादेन्द्रिय जीतने का भी पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

पवित्र-पापी।

[लेखक—श्री नरेन्द्र]

(१)

यहां कौन है जग में पापी ?
यह मेरा भोला भाई है,
यह मेरा भूला भाई है,
यहां कौन है इस जग में पापी ?

(२)

बालक हैं थक ही जाते हैं,
पल भर कहीं ठहर जाते हैं,
क्या डर है यदि कठिन मार्ग में,
संग न ये शिशु चल पाते हैं।

(३)

कंटक मय जग जीवन बन है,
मार्ग निरन्तर अगम गहन है,
हे, गम्भीर, ज्ञान के ज्ञाता !
बालक हैं, थक ही जाते हैं।

(४)

महाव्रती हे गहन तपस्वी !
ये लघु शिशु हैं, चञ्चल मन हैं,
ज्ञान शून्य, निर्बोध सरल चित्—
शिशु ससीम हैं, कोमल तन हैं,
देखे फूल कली किसलय दल,
क्रीड़ातुर हो उठे चपल चल,
ये क्या जानें जग मिथ्या है,
यह असार जग की माया है
भ्रमित हुए भूले भृङ्गों से,
लगे खेलने नवरङ्गों से,

(५)

प्यास लगी देखी मरीचिका,
भूल गए अपनापन मरु में,
भूख लगी देखे सुवर्ण फल,
भूले शिशु सोने के तरु में,
कौन नहीं हो उठता चञ्चल ?
कौन नहीं भूला जीवन में ?
केवल शिशु ही थे यदि भूले
जीवन मरु में तृष्णा तरु में !
हे इन्द्रिय जित ! अह अचञ्चल !
ये शिशु हैं कुन्दन से निर्मल !

(६)

बिकसित कुसुमों की सुस्मिति मिस-
डाली डाली आमंत्रित कर।
शूल चुभाती थी, हा निर्दय—
शिशुओं को यों सम्मोहित कर॥
मरु की मिथ्या मृग मरीचिका,
इन्हें भ्रमाती थी जीवन में।
तृष्णा नित फैला सुवर्ण फल—
इन्हें लुभाती थी निज बन में॥
वञ्चित भ्रमित दुखित नख दुर्बल।
ये ही हैं वे पापी निर्बल॥

(७)

कण्टक मय जग जीवन बन है।
मार्ग निरन्तर अगम गहन है॥
लो अब तो निशि भी घिर आई,
निर्जन में छाई अँधियारी,
ज्ञानवान् ! हे महा पुरुष ! क्या—
छोड़ चलोगे इनको बन में।
हे प्रदीप ! क्या इन्हें भटकते
ही छोड़ोगे इस जीवन में ?
भूले भटके हैं शिशु निर्बल।
ये पापी कुन्दन से निर्मल॥

—प्रभात फेरी

प्रकाशक—पं० श्रीराम शर्मा "[illegible]" —